

रामाश्रम सत्संग डिजिटल प्रकाशन

प्रेम का सूर्य



चाहे दुनिया के सारे काम छूट जाएँ पर उसका नाम न छूटे,

यही तुम्हें भवसागर से पार कर देगा

प्रेम का सूर्य

प्रथम संस्करण : १९९४

रामाश्रम सत्संग, गज़ियाबाद

मूल्य १७ रूपये

प्रकाशक : अंकोर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, दूरभाष ५५८७१३१

मुद्रक : आकृति ग्राफिक्स, नई दिल्ली, दूरभाष : ५७०००८९

डिजिटल संस्करण : २०१९

रामाश्रम सत्संग, ग़ाज़ियाबाद ।

अनुक्रमणिका

दो शब्द

१. ऋग्वेद से
२. एको सत्य विप्रा बहुधा वदन्ति
३. धर्म
४. हिन्दू धर्म
५. बुद्ध धर्म
६. सिक्ख धर्म
७. ईसाई धर्म
८. इस्लाम
९. सभी धर्मों का मूल सिद्धान्त
१०. सच्चा गुरु व शिष्य
११. गुरुदेव, आचार्यपद व आध्यात्मिक विद्या
१२. ध्यान
१३. अनेकता में एकता
१४. साधना के अनुभव
१५. विद्या का परम लक्ष्य
१६. नाम की महिमा
१७. कथनी, करनी व रहनी
१८. सबसे ऊँची प्रेम सगाई
१९. कर्मों का प्रभाव
२०. गुरु शिष्य का अंतरंग प्रेम
२१. गुरु में अटूट विश्वास
२२. हमारे गुरुदेव की देन

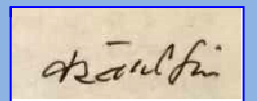
दो शब्द

अपने परमपूज्य गुरुदेव डॉ० श्री कृष्ण लाल जी की जन्म शताब्दी पर आज इस छोटी सी पुस्तक को प्रस्तुत करते समय मुझे बहुत हर्ष हो रहा है। हमारे यहाँ का सिलसिला ही प्रेम और समर्पण का है। वे अथाह प्रेम के सागर थे, उनसे मिले असीम प्रेम को वर्णन करने में मेरी भाषा और लेखनी दोनों ही असमर्थ हैं। उनका वह प्रेम ही तो था जिसने मुझे सेवा के योग्य बनाया, अन्यथा साधन तो बहुत बड़ी चीज़ थे मेरे लिए जिस दिन से मुझे उनके चरणों का आश्रय मिला, अनवरत हो रही प्रेम वर्षा ने जाने अनजाने में लीन होता चला गया। मेरे एक अच्छे मित्रों में से थे जो पूज्य गुरु महाराज को जानते थे। मेरा दैनिक जीवन उनसे कुछ छिपा हुआ न था। वह यह भी जानते थे कि गुरु महाराज मुझसे बहुत प्यार करते थे। नित जीवन में मैं कोई साधन या पूजा नहीं करता था। एक बार मेरे उन मित्र ने इस बात की शिकायत गुरु महाराज से की। इस शिकायत की कोई भी प्रतिक्रिया गुरु महाराज पर नहीं हुई। गुरु महाराज प्रायः मेरी दुकान पर आते थे। उनसे मिलने के लिए मेरे मित्र भी आते थे। एक बार पुनः उन्होंने मेरी साधन-पूजा न करने की बात गुरु महाराज को बताई। आश्चर्य तो तब हुआ जब बिना किसी प्रतिक्रिया के बहुत ही शान्त भाव से गुरु महाराज ने कहा - " सरदारजी को कुछ करने की क्या आवश्यकता है ? उनके लिए तो मैं कर ही रहा हूँ। " ऐसा था उनका असीम प्यार।

परम पूज्य गुरुदेव से मैं प्रति शनिवार और रविवार के अलावा अधिक सम्पर्क भी न कर सका। किन्तु जब शनिवार को मैं सिकन्दराबाद जाता था तो लगता था कि जैसे वे मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे हों। शनिवार को जाकर मैं सोमवार के सुबह वापस होता। उस दो दिन में मेरे खाने-पीने, सोने आदि का प्रबन्ध वे स्वयं करते थे। स्नान के लिए स्वयं पानी निकालकर एक नई धोती, तौलिया रख देते थे, चप्पल भी लाकर रख देते थे पहनकर बाथ-रूम वगैरह जाने के लिए। यह सभी काम चुपचाप वह स्वयं कर देते थे। यह वह असीम प्यार था जिसमें मैं मदमस्त खोया रहता था। आज भी प्रतिपल उस मधु वर्षा की अनुभूति होती रहती है। यह अलौकिक अथाह प्रेम ही तो मेरा आज मेरा पाथेय है। वैसे ही अवर्णनीय प्रेम का हम लोगों में अभाव है।

गुरु का प्रेम तो सदैव सच्चा होता है। उसी से हमारा उद्धार होता है। परन्तु हमारा प्रेम भी निस्वार्थ और अटूट होना चाहिए। परम पूज्य गुरुदेव बराबर कहते थे - " एक प्रेम के नाते को छोड़कर मैं किसी भी और नाते को नहीं जानता। केवल प्रेम और वह भी निस्वार्थ प्रेम, जो लोग बिना किसी स्वार्थ के मुझे प्रेम करते हैं, चाहे वे कैसे भी हैं, मैं उन्हें प्रेम करता हूँ। वह मेरे हैं और मैं उनका हूँ। वह सदैव मुझ पर आश्रित रह सकते हैं और वे देखेंगे कि मैं सदैव उनकी सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ। "

आज के वातावरण को देखते हुए परम पूज्य गुरुदेव से मिला प्रेम ही इस पुस्तक का आधार है।



करतार सिंह

अध्यक्ष, रामाश्रम सत्संग

नई दिल्ली

१३ अक्टूबर, १९९४

सृष्टि से पहले सत्य नहीं था, असत्य भी नहीं
न वायुमण्डल का अस्तित्व था, न था न क्षितिज का
क्या था पृथ्वी का आवरण जो देता था उसको छाया ?
क्या था विशाल महासागर जो देता था सब प्राणियों को आश्रय ?

न मृत्यु थी, न था जन्म का बन्धन
निशा व दिन का न था भेदभाव
एक ही थी चीज़ महान जो स्वतः ही थी जीवित
उसके सिवाय न था किसी चीज़ का अस्तित्व !
था सिर्फ कोलाहल तिमिर में छिपा हुआ
जो था वो था सिर्फ शून्य और आकृति विहीन
उस महान शक्ति की ऊष्मा से ही जन्मा था वह !
तदोपरान्त पहले पहल चाह ने लिया जन्म
चाह जो आत्मा का प्रथम था बीजाणु
ऋषियों ने अपनी आन्तरिक तपस्या के बल पर
खोज की थी जैव और अजैव के सम्बन्ध की
कालान्तर में ये अनुप्रस्थ रेखा बढ़ती गयी
क्या रहा इसके ऊपर और क्या हुआ धूमिल
उत्पादक एवं महाबली शक्तियों का हुआ विकास
और उत्पन्न हुई विभिन्न क्रियाओं द्वारा असीम ऊर्जा
किसे है पता और कौन कर सकता है सिद्ध
कब हुआ जन्म और कहाँ हुआ इसका निर्माण
ईश्वर तो बना सृष्टि की रचना के बाद
तो कौन कह सकता है कब प्रथम हुई इसकी उत्पत्ति
वही तो है प्रथम उदगम इस विशाल श्रष्टि का
उसी ने किया ब्रह्माण्ड का निर्माण या नहीं ?
उसी के नेत्र ऊपर स्वर्ग से इसकी करते निगरानी
शायद वही है जानता, या नहीं भी जानता
है किसी को नहीं पता, नहीं है पता - ((ऋग्वेद)

=====

यार की गलियों में क्योंकर, यार जाना छोड़ दे !
किस तरह बुलबुल चमन से, आशियाना छोड़ दे !
अब्र वारा छोड़ दे, बिजली तड़कना छोड़ दे !
रुह कालिब छोड़ दे, या जिस्म को जाँ छोड़ दे !
मैं न छोड़ूंगा तुझे चाहे ज़माना छोड़ दे !

चमन=उपवन, आशियाना=घोंसला, अब्र=बादल, वारा=पानी, रुह=आत्मा, जिस्म=शरीर, जाँ=जान

=====

एको सत्य विप्रा बहुधा वदन्ति

The truth is one, the wise call it by many names.

ऋग्वेद में प्रतिपादित यह शाश्वत सत्य भारत के सांस्कृतिक और धार्मिक स्वभाव की आधार शिला है। जिस तरह से भारतवर्ष अनेक लोगों और अनेक धर्म के मतावलम्बियों का गृहस्थान रहा है वैसा स्थान विश्व में और कहीं भी देखने में नहीं आता। विभिन्न समुदाय के लोग अलग-अलग संस्कृति, धर्म और वंशानुगत परम्परा के साथ सहस्राब्दियों से भारत में आकर रच बस गए। यह सत्य है कि यह देश केवल भारतीय धर्मों का ही निवास स्थान नहीं, बल्कि पश्चिम देशों से आने वाले सेमेटिक (semitic) धर्म, इस्लाम, क्रिश्चियानिटी और जुड़ाइज़्म का भी यहाँ उतना ही विकास हुआ जितना भारतीय सनातन धर्म का। निःसंदेह धार्मिक चेतना की तह में भारतीय भूमि की उत्पादक गौरवशाली प्रेरणा ही रही है। सचमुच ही भारत धार्मिक विश्वासों की वह भूमि है जहाँ जहाँ विश्व के सभी धर्मों का समागम देखने को मिलता है।

यद्यपि समय के साथ धर्म के शाश्वत तत्व में कुछ रूढ़िवादी तत्वों का समावेश होता रहा है, तब भी सनातन धर्म विलीन नहीं हुआ। आज भी भारतीय संस्कृति की जिस निष्ठा की, देश-विदेश के लोगों पर भारतीय संस्कृति की अमिट छाप पड़ी है वह अद्वितीय है। इसका कारण क्या है? वास्तव में इसका कारण सनातन धर्म का वह स्रोत है जो विश्व के लिए अनोखा है। हमारी प्रकृति, परमेश्वर की दयालुता की शक्ति, विवेक बुद्धि, इच्छा शक्ति हमारे जन्म से पूर्व तथा जन्म के पश्चात भी हमारे साथ लगी रहती है, इससे दूर भाग सकना हमारे वश से परे की बात है। अतः यह सदा से है और सदा रहेगी। इसीलिए इनको सनातन धर्म कहते हैं। 'सना' से अभिप्राय सदा से है, जो सदा रहे वह सनातन है। 'धर्म' शब्द का अर्थ है जो जगत को धारण किये हुए है। इसीलिए सनातन धर्म शाश्वत है। इस देश में मनुष्य जन्म का उद्देश्य परमात्मा की प्राप्ति है। यह धर्म उस स्रोत को मानता है जहाँ आत्मा को परमात्मा का अंश मानते हैं, जिसे ऋषि-मुनियों ने अपने अनुभव के आधार पर कहा है। सबके लिए उनका एक ही उपदेश है, एक ही सन्देश है। परमात्मा एक है। वह किसी जाति विशेष या धर्म विशेष का नहीं है, बल्कि सारे संसार का है। उसकी प्राप्ति ही सब धर्मों का असली उद्देश्य है। यद्यपि संसार के सभी धर्मों का शाश्वत सत्य एक ही है, तो भी धर्म का बाहरी स्वरूप एक दूसरे से भिन्न अवश्य प्रतीत होता है। हर धर्म के तह में यदि हम झाँकें तो सबका सार एक ही मिलेगा। मनुष्य होने के नाते हम सब एक ही मानव जाति के हैं तथा हमारा आन्तरिक आधार भी एक

ही है। वास्तव में सभी मनुष्य, क्या पूर्व और क्या पश्चिम, सभी एक ही पिता (परमात्मा) की संतान हैं, सब एक समान हैं। किन्तु मनुष्य अहंकार, मोह-माया और विषय-विकारों में इस तरह फँसा है कि वह अपने असली उद्देश्य को तो भूल गया है और आपस में एक दूसरे को हेय दृष्टि से देखने लगा है। धर्म के नाम पर ईर्ष्या, द्वेष, कलह आपस में बढ़ने लगे। अहंकार ने नए-नए सिद्धान्तों को जन्म दे दिया। मानव मानव न रहा, धर्म के नाम पर दानवता नृत्य करने लगी। यह तो सोचने की बात है कि बच्चा जब जन्म लेता है तो क्या धर्म, सम्प्रदाय के अनुसार उसका रक्त, मांस-मंजर, हड्डियाँ, जिगर, गुर्दे, मष्तिष्क और हृदय अलग-अलग होते हैं ? क्या एक का रक्त लाल और दूसरे का काला होता है ? अन्तर कहाँ है ?

यह ठीक है कि हर सम्प्रदाय अथवा धर्म की अपनी विधियाँ हैं, अपने-अपने तरीके हैं और अपना विचार तथा दर्शन है। अपने धर्म के अनुसार चलना गलत नहीं है, क्योंकि सभी धर्मों का उद्देश्य एक है। धर्म तब तक धर्म है जब तक दूसरों को बिना कोई नुकसान पहुँचाये उसका पालन किया जाता है। यह हिन्दू का धर्म है, मुसलमान का अपना धर्म है, ईसाई, सिख का अपना धर्म है, बौद्ध, पारसी और जैन का अपना धर्म है। इन तमाम धर्मों को देखते हुए एक प्रश्न उठता है - क्या मानव होने के नाते उसका कोई धर्म नहीं है ? पृथ्वी पर जब मनुष्य आता है तो क्या वह कोई धर्म अपने साथ लाता है ? आज से लगभग पाँच सौ साल पहले सिख नहीं थे। तेरह सौ साल पहले मुसलमान नहीं थे, दो हजार वर्ष पूर्व ईसाईयों का कहीं नामो-निशान भी न था। धर्म, जाति की यह संकुचित मानसिकता तो हमारी अपनी बनाई हुई है। इसीलिए आज सारा संसार बेचैन है। यह जो आपस में इतनी लड़ाई हो रही है सब इसी संकीर्णता का परिणाम है। जो कुछ भी हम यहाँ देख रहे हैं सब नाशवान है और यहीं छूट जायेगा। किन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि हम उसी के पीछे मदान्ध हैं, वही हमें स्थिर और सुखदायी प्रतीत हो रहा है। नित्य जो है उसे हम न देख पा रहे हैं और न समझते ही हैं। यही कारण है कि हमारे अन्दर घृणा, द्वेष व वैर भाव का बाहुल्य होता जा रहा है। आपसी प्रेम तो स्वप्न सा प्रतीत होता है। दुःख है कि आज हम मत, सम्प्रदाय, वर्ग और दल व गुटों तथा जाति-उपजाति आदि की भूल-भुलैयाँ में उलझ गए हैं। अन्तर कहाँ है ? मनुष्य को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई अलग धर्म के नाम से कहा जाता है। क्या वह केवल मनुष्य नहीं है ?

वर्तमान समय में हम देख रहे हैं कि विश्व में चारों ओर भीषण विभीषिका मची हुई है। लोग एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो उठे हैं। मेरा-तेरा, धर्म-उपजाति को लेकर लोग आपस में लड़ रहे हैं। लोग इधर से उधर आश्रय के लिए भाग रहे हैं। औरतें, बच्चे, बेसहारा ओर अनाथ हो

रहे हैं परन्तु अपनी दानवी कृतियों के आगे मनुष्य को इसका होश भी नहीं है कि इस रक्तपात का धार्मिक कृत्य क्या है ? क्या यह मानवता के उत्थान के लिए हो रहा है ? शरीर, जो हमारे साथ आता है परन्तु साथ जाता नहीं है, उसी के द्वारा जो नाते रिश्ते संसार में हमारे बनते हैं उस के लिए हम पागल हुए रहते हैं । यह तो मनुष्य के अन्तर का " मैं " है जो देख कर भी नहीं देखता। यह वह "मैं" ही तो है जो कहता है कि मैं अमुक धर्म का हूँ । इस भेद-विभेद का रचियता भी तो यह "मैं" ही है । यह वह "मैं" ही तो है जो कहता है कि यह मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा मेरा है । यही मनुष्य को मनुष्य से लड़ा कर सभ्यता को विनाश तट पर पहुँचा देता है । किन्तु फिर भी हम सोचते हैं कि हम बड़े सुखी हैं। परन्तु क्या नाशवान वस्तु भी कभी सुख पहुँचा सकती है ? सब जानते हुए भी मनुष्य मोह माया की धारा में बहा चला जा रहा है जिसका कोई ओर छोर नहीं है । संसार की आशा मनुष्य बाँधे रहता है परन्तु क्या कभी परछाई भी हाथ आयी है ? मनुष्य का जन्म अनमोल है, वह बार-बार नहीं मिलता । अतः इसी जन्म में परमात्मा से मिलने की चेष्टा करनी चाहिए। इसीलिए संतों का आगमन संसार में होता है कि वे मनुष्य मात्र को अज्ञान से निकाल कर ज्ञान की ओर ले जायें। संतों की यह परम्परा अनादि काल से चली आ रही है । उन्होंने संसार को केवल एक ही उपदेश दिया है - मनुष्य एक है, प्रकृति एक है, श्रष्टि एक है, उसका रचियता एक है, वह असीम है, उसे घेरे में बाँधना कैसा ? मनुष्य जन्म बड़े भाग्य से मिलता है, उसे बंध में बाँधकर जीवन मत गंवाओ । उम्र दिन प्रतिदिन घट रही है। मृत्यु पास मंडरा रही है। अतः परमात्मा का अनुभव अपने अन्तर में करो । अन्तर की आँखों से सत्य को देखो। संसार सागर की लहरें किसी की प्रतीक्षा नहीं करतीं । संत किसी को घरबार छोड़कर जंगल में जाने को नहीं कहते । पूज्य गुरुदेव (डॉ० श्रीकृष्ण लालजी महाराज) हम लोगों को पूज्य संत बनर्जी साहब के पास ले जाया करते थे । एक दिन उनका एक शिष्य तीर्थ स्थानों का दर्शन करने के लिए जाने की आज्ञा मांगने आया । बहुत शांत भाव के साथ आपने केवल इतना ही कहा - " भ्रमण पर जाओ पर भ्रम को छोड़ कर जाओ ।" सत्य है यह भ्रमजाल ही तो है जो हमें नचा रहा है । धर्म कोई कपडा नहीं है जो मन्दिर, गिर्जा, गुरुद्वारा या मस्जिद या गोष्ठी में से आकर उतार कर हैंगर में टांग दें । यह तो मानव के रोम-रोम में समा जाने वाला एक अनूठा रंग है जिसमें रंग जाने पर फिर कभी कदम डगमगाते नहीं ।

सन्तों का कहना है कि संसार में रह कर सभी सांसारिक कर्तव्यों को निभाते हुए आत्मिक अभ्यास अवश्य करो । इसीलिए वह कहते हैं कि सम्पूर्ण प्राणियों में परमात्मा को

देखो और परमात्मा को सम्पूर्ण प्राणियों में देखो। यही धर्म है, यही शाश्वत सत्य है, सनातन है। गीता में स्वयं भगवान ने अपने श्रीमुख से कहा है --

शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्थैकान्ति कस्य च !! (गीता अ० १४ श्लोक २०)

शाश्वत (नित्य) धर्म का एक एवं अखंड एक रस आनन्द का मैं ही आश्रय हूँ। इन्द्रिय सुख की मृगमरीचिका से निकलकर उस असीम से लौ लगाना ही पड़ेगा। इसके लिए शुद्ध आजीविका की आवश्यकता है। क्योंकि शुद्ध आजीविका ही सत्य विचार और सत्य विवेक की जननी है। देखा जाए तो जितने भी सन्त हुए हैं सभी ने जीवनयापन के लिए स्वयं परिश्रम किया है। कबीरदास कपड़ा बुनते थे, रविदास जूता बनाते थे, नानक, नामदेव सभी अपनी आजीविका के लिए श्रम करते थे। समाज पर भार बनकर जीवनयापन करना भक्ति के विरुद्ध है। आलस और भक्ति का कोई मेल नहीं है। इसीलिए उन्होंने कर्म और आत्मनिर्भरता का उपदेश स्वयं वैसा करके दिया है।

सन्तों का जीवन ही परोपकारमय होता है। उनके लिए तो सभी जाति, धर्म, पंथ व सम्प्रदाय एक होते हैं। उनका किसी से भी भेद-भाव नहीं होता है। वह पुकार-पुकार कर कहते हैं - " उठो, जागो, निर्बलता के इस व्यामोह से जागो। वास्तव में कोई भी दुर्बल नहीं है। आत्मा अनन्त, सर्वशक्तिसम्पन्न और सर्वज्ञ है, इसलिए उठो, अपने वास्तविक रूप को प्रकट करो। तुम्हारे अन्दर जो भगवान है उसकी सत्ता को ऊंचे स्वर में घोषित करो, उसे अस्वीकार मत करो। "

(स्वामी विवेकानन्द) अपनी दुर्बलताओं से जागने के लिए उन्होंने हमें सदा प्रेरित किया है। निष्पक्ष भाव से मनुष्यों में वह अपना प्रेम लुटाते रहे क्योंकि वे हर किसी में परमात्मा के रूप को देखते हैं। उन लोगों ने प्रेम के द्वारा घृणा पर विजय प्राप्त की थी। अशान्त जनों को शान्ति तथा दुःखियों को सुख प्रदान किया था। यह सब उन्होंने लोगों को दिया था अपने हृदय की परिपूर्णता के फलस्वरूप। इन सन्तों और महापुरुषों ने निर्भय होकर संसार को उपदेश दिया है। उन्होंने कभी किन्हीं मतों, पन्थों, सम्प्रदाय, जाति व राष्ट्र को संकीर्ण दायरे में बाँध कर न तो चिन्तन ही किया और न उसकी शिक्षा दी। उन्होंने मानव को केवल मानव के ही रूप में देखा। उसकी अपूर्णता और क्षुद्रता के प्रति करुणा का अनुभव किया, मानव में निहित गुणों को विकसित करने की प्रेरणा दी। उनका ध्येय तो भ्रमों में उलझे मनुष्यों को सच्चाई और यथार्थ की ओर मोड़ देना रहा है।

सन्तों का कहना है कि आत्मा जो परमात्मा की अंश है उसे अपने अन्तर में ढूँढो । जीवात्मा अन्तर्मुखी तभी हो सकती है जब वह अपने मन पर संयम करे । मन तो बड़ा चंचल होता है । उसकी आदत ही होती है तरंगें उठाना, जन्म-जन्मान्तरों से संसार में भटकते रहने से उसकी आदत जो हो गयी है । घर-परिवार, धन-दौलत की मोह - माया में उलझ कर असली याद परमात्मा की तो छोड़ बैठता है, सांसारिक प्रलोभनों में भटकने लगता है । मन पर अनेक संस्कारों का भार पड़ा होता है, इसीलिए सब सन्त महात्माओं का कहना है कि अपने अंतर में झांको। बिना अन्तरावलोकन के मन में स्थिरता नहीं आएगी; इस अन्तरावलोकन से अपनी कमियाँ मालूम पड़ेंगी । अन्तर की कमी दूर होने पर एक अदभुत शक्ति का अनुभव होने लगेगा ।

सन्तों का धर्म ही निराला होता है। उनका धर्म मानवता है। वे सत्य की खोज और मानव कल्याण में सदैव लगे रहते हैं। वह कहते हैं - **" एक प्रेम के नाते को छोड़कर मैं और किसी भी नाते को नहीं जानता। केवल प्रेम और वह भी निःस्वार्थ प्रेम। जो लोग बिना स्वार्थ के मुझे प्रेम करते हैं, चाहे वे सज्जन हैं या दुष्ट, मैं उन्हें प्रेम करता हूँ । वे मेरे हैं और मैं उनका । वे सदैव मुझपर आश्रित रह सकते हैं और वे देखेंगे कि मैं सदैव उनकी सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ "** (पूज्य गुरुदेव डॉ० श्रीकृष्ण लाल जी) ईश्वर सर्वव्यापी है, उसका दर्शन तो संसार की हर चीज़ में होता है, अतः बिना किसी भेद-भाव के सबसे प्यार करना चाहिए। सन्त मन, बुद्धि और आत्मा के भेद -विभेद बता कर सहज ही प्राणी को असली आनन्द की ओर मोड़ देते हैं। मनुष्य में मनुष्यता के उत्तम गुणों को विकसित करना ही सभी सन्तों का प्रयास रहा है। उनका कहना है कि जबतक मनुष्य में मनुष्यता का विकास नहीं होता तब तक क्या उसे मनुष्य कहा जा सकता है ? सत्य, शील, दया, सन्तोष व क्षमा आदि गुण मनुष्य के अन्तर में समां जाना चाहिए ।

वास्तव में सच्चा धर्म सर्वव्यापी है। हर एक मनुष्य के लिए, सारे संसार के लिए एक ही है। बाहर से देखने में ज़रूर एक दूसरे से फ़र्क दिखाई देता है। परन्तु अगर हम हर एक धर्म की निष्पक्ष विवेचना करें तो पायेंगे कि सबका लक्ष्य एक ही है। एक ही नियम सब धर्मों का आधार है जो सारे संसार के लिए एक है। वह सदा यही कहते हैं कि माया अर्थात् सांसारिक विषय वासनाओं से उपराम होने के लिए दीनता को अपनाओ । जब तक दीनता नहीं आती 'अहम' से छुटकारा पाना कठिन है । 'अहम ' से छुटकारा मिलने पर ही आत्मा का साक्षात्कार होता है । एक बार आत्मसाक्षात्कार होने पर परमात्मा से मिलन होना कठिन नहीं है ।

अब इस आत्मसाक्षात्कार के लिए हमें प्रयत्न करना होगा । साधारण विद्याओं की प्राप्ति के लिए हमें विद्यालय ओर शिक्षकों की ज़रूरत पड़ती है । उसी तरह आत्मतत्व को समझने के लिए अनुभवी सन्त को खोजना होगा । सन्तों की शरण तथा उन सत्संग में जाकर ही परमात्मा के सच्चे नाम के विषय में पता चलेगा और उन्हीं से इनकी प्राप्ति होगी ।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने इस बात को सिद्ध कर दिया कि रास्ते और नाम अलग-अलग होते हुए भी परमात्मा एक है और सच्चे भक्तिभाव से खोजने पर वह ज़रूर मिलते हैं। उन्होंने सभी धर्मों की उपासना करके उस धर्म के नामानुसार दीक्षा लेकर ईश्वर के दर्शन किये हैं। इस बात से स्पष्ट है कि ईश्वर के जिस नामरूप की आराधना की जाए वह उसी रूप में दर्शन देंगे ।

यह एक ऐसा दृष्टांत है कि बार-बार मनुष्य को सोचने के लिए विवश करता है कि भेद कहाँ है ? यह विरोधाभास क्यों है ? " संसार के सभी विचारशील पुरुषों को इस बात का निश्चय हो चुका है। सभी धर्म एक ही वस्तु को प्राप्त करने वाले भिन्न-भिन्न मार्ग हैं, इसीलिए एक को दूसरे से द्वेष नहीं करना चाहिए। यही बात सर्वत्र बुद्धिमानों के लेखादि से ध्वनित होने लगी है। भिन्न-भिन्न मतों के सम्बन्ध में लोगों के मन में उपेक्षा होती थी और आत्मीयता के अभाव में परस्पर प्रेम उत्पन्न होने का कोई मार्ग ही नहीं था। ऐसी आत्मीयता का अनुभव करने का कोई साधन न था कि भिन्न-भिन्न धर्म वाले अपने-अपने धर्म में रहते हुए भी एक दूसरे के सहधर्मी हैं तथा उन सबका उदगम स्थान एक ही है।

इसी कमी को दूर करने के लिए भगवान श्री रामकृष्णदेव का अवतार हुआ। यही कारण है कि विभिन्न धर्मावलम्बियों को श्री रामकृष्ण में स्वधर्मीय आदर्श गुरु की प्राप्ति हो जाती है। "

0000000

धर्म

मनुष्य संसार के दुखों से संतप्त होकर, अंधकार से प्रकाश और दुःख से सुख की खोज में व्याकुल होकर आर्तनाद करने लगता है, तब फिर वही परमशक्ति मनुष्य के अन्दर तीव्र इच्छा जाग्रत कराती है। अपनी व्याकुलता से छुटकारा पाने के लिए वह परमात्म सत्ता या धर्म की ओर झुकता है। सच है - ' **दुखों की अगर मार खाई न होती, तो गुरुवर तेरी याद आयी न होती !** '

यह एक कटु सत्य है कि यदि मनुष्य दुःख से परेशान न हो तो वह धर्म की ओर कभी भी आकर्षित न हो। धर्म चाहे कोई भी हो, दुःख से निवृत्ति पाने के लिए मनुष्य उसका आश्रय लेता है। दुःख के अथाह सागर से उबरने के लिए धर्म तिनके का वह सहारा है जिसके द्वारा मनुष्य शान्ति के किनारे पहुँच जाता है। संसार चारों ओर दुःख दर्द और अंधकार से भरा हुआ है। जिस तरह मकड़ी जाले में फंसी हुई तड़पती रहती है, उसी तरह मनुष्य संसार रूपी जाले में फंसा तड़पता रहता है। यह वही सत्य है जिससे दुःखी होकर राजकुमार सिद्धार्थ ने राजपाट, सुख- सुविधा सबका त्याग कर दिया। बड़े-बड़े ऋषि मुनियों ने वर्षों कन्दराओं में तपस्या की है। सुख और शान्ति पाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति कोई न कोई मार्ग खोज ही लेता है। संसार में प्राणी अगर सुखी नहीं हैं। तो अज्ञान, गरीबी के कारण, तो कहीं धन, विद्या व यश सब कुछ होते हुए भी लोग दुःखी हैं। सांसारिक विषय वासना व वैभव की ओर मनुष्य पागलों की भाँति भाग रहा है। अमीर व गरीब दोनों को वह अपने चंगुल में लपेटे हुए है। इसी भूल-भुलैये में मानव जीवन का अन्त हो रहा है। बृद्ध मृत्यु को प्राप्त होते जा रहे हैं परन्तु खोज खोज ही रह जाती है। चारों ओर हाहाकार का साम्राज्य छाया हुआ है। मनुष्य उससे छुटकारे के लिए तड़प रहा है लेकिन इस मृगमरीचिका से निकल पाने की राह उसे नहीं मिल रही है। कितने तो यही नहीं जानते कि वे चाहते क्या हैं ?

क्या संसार में ऐसा कोई व्यक्ति है जो यह कह सके कि वह सुखी है ? क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जो कह सके कि उसने अपराध नहीं किया है और वह विषय-वासनाओं से रहित है। नैतिक चरित्र का सर्वथा अभाव ही दीख रहा है। कुछ संत महात्मा अवश्य हैं जो टिमटिमाकर संसार को प्रकाश दिखा रहे हैं, अन्यथा जन-समूह तो आज नैतिकता व आध्यात्मिकता से परे आचरण में लीन है। सचमुच ही मनुष्य दुःखी, अशान्त और व्यथित होकर अज्ञान और अन्धकार में मार्ग ढूँढ रहा है ।

आज जो लोग आधुनिक जगत की प्रचलित विचारधारा से प्रभावित व उसके सम्पर्क में हैं उन्हें अपनी पुरातन संस्कृति अथवा जीवन प्रणाली की परवाह नहीं है। पश्चिमी सभ्यता के अन्धानुकरण में कुछ लोग धर्म की उपयोगिता के विरोध में तथा धर्म द्वारा मानव समाज को पहुँचाई हानि के बारे में ऊँचे-ऊँचे शब्दों में विरोध कर रहे हैं। कुछ पुरातनपंथी इस भयंकर आंधी में अपने को असहाय पा रहे हैं और दुःखी हैं कि कहीं पुरातन संस्कृति केवल अवशेष मात्र ही न रह जाये। दिन-प्रतिदिन उठते इस तूफानी दृश्य को देखकर व्यक्ति स्वाभाविक रूप से एक दीर्घ श्वास खींच कर कहता है - " **संसार कहाँ जा रहा है ? यदि यही स्थिति रही तो मानवता के लिए बाकी क्या रह जायेगा ?** "

यह सब तो है परन्तु एक प्रश्न सदैव उठता है कि क्या कभी संसार भला भी था ? सच्चाई तो यह है कि अतीत को हमने देखा नहीं इसलिए सुहाना लगता है। दूर से दीखने वाली सभी वस्तु सुन्दर दीखती हैं। वर्तमान के प्रति इस असन्तोष का कारण मानव स्वभाव की विशेषता है कि जिसे हम देख नहीं पाते वह हमें सुन्दर प्रतीत होता है। बीती बातों के लिए हमेशा दुःख प्रकट करता है और भविष्य के लिए उत्सुकता भरी दृष्टि से देखता है। वही भविष्य जब वर्तमान का रूप लेता है तो वह अपना आकर्षण गवाँ बैठता है। जब तक किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए प्रयास किया जाता है, आनन्द मिलता है, वस्तु प्राप्त हो जाने पर वह आनन्द जाता रहता है। इसी से मनुष्य दुःखी व असन्तुष्ट बना रहता है। किसी से भी पूछिए, भले ही वह हर प्रकार से सम्पन्न क्यों न हो, वह यही कहेगा कि वह बहुत दुःखी है। समय-समय पर अनेक नामों से जो धार्मिक संस्था का उदभव हुआ वह इन्हीं परेशानियों से बचने के लिए धर्म धारण करने को कहते हैं। धर्म धारण करना यह है कि वचन और कर्म से ऐसे कार्य न करें जिससे अपने आपको और दूसरों को शारीरिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक कष्ट पहुँचे, सम्पादित कर्म सन्देह रहित हो जिससे उसको करने में किसी प्रकार की लज्जा या भय न हो।

अपने प्राचीन ग्रंथों में लिखा है कि जब -जब संसार में धर्म की हानि हुई है, मनुष्य धर्म से च्युत हुआ है, सन्त महात्माओं का पृथ्वी पर आगमन हुआ है। उन्होंने मनुष्य को मानव धर्म का उपदेश दिया है जिस पर चलकर उसका कल्याण हुआ है। यद्यपि इन सब से नैतिक आचरण में सुधार हुआ है और किसी ने ईश्वर दर्शन भी पाए हैं, परन्तु क्या मानवता को बचा पाए ? महापुरुष आते रहे, प्रकाश दिखाते रहे फिर भी मनुष्य मेरा धर्म सबसे अच्छा कह कर आपस में लड़ता रहा। यह केवल प्रागैतिहासिक काल की बात नहीं है, हर काल में ऐसी बातें हुई हैं। उन महापुरुषों को हम बुरा -भला कहते रहे। गुरु नानक देव को कुमार्गी, दीवाना

और पागल कहा गया। कबीर साहब के साथ क्या- क्या नहीं किया गया ? हज़रत ईसा को सूली पर चढ़ा दिया गया। गुरु गोविन्द सिंह जी के बच्चों को ईंटों में चुन दिया गया। शम्स तवरेज़ की जीतेजी खाल उतार ली गयी। गुरु अर्जुन देव तथा गुरु तेग बहादुर साहब को कैसे अमानुषिक कष्ट दिए गए। महात्मा गाँधी को गोली से ही बेध दिया गया। आश्चर्य है कि यह सब धर्म के नाम पर किया गया। किसकी आज्ञा से ? कट्टर धर्मानुयाइयों, धर्म रक्षक कहलाने वालों की आज्ञा से ऐसा किया गया। आजकल हिन्दू-हिन्दू, शिया-सुन्नी, हिन्दू-मुसलमान-सिख सभी एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो उठे हैं। धर्म को व्यक्तिगत मुद्दा बना कर लड़ रहे हैं। क्या यही धर्म है ?

यूरोप में मध्यावर्ती काल में ईसाई धर्म के कारण कैसी अमानवीय बर्बरता हुई है। धर्म के नाम पर हज़ारों स्त्रियाँ व बच्चे जला कर मार डाले गए। वर्तमान समय में भी आसाम व कश्मीर में कितनी बर्बरता हो रही है। अब किसको धार्मिक और किसको अधार्मिक कहें, जो जला कर मार डाले गए वह या जिन्होंने जला दिया वह ? आज विश्व में धर्म या जाति के नाम पर जो प्रचंड आँधी उठी है, क्या वह सच्चा धर्म है ? क्या कोई धर्म ऐसे पाशविक कृत्य के लिए आदेश देता है ? सदा ही ' धर्म खतरे में है ' के नाम पर पाशविक कृतियों का बोलबाला रहा है।

युग के प्रभाव और जड़ भोगमयी सभ्यता के विस्तार से आज जगत में धर्म के सम्बन्ध में बड़ी कुरुचि हो रही है। जब कि भारत में ऐसे भी लोग हुए हैं जिन्होंने धर्म के लिए अपना सब कुछ त्याग दिया है। राजा हरिश्चंद्र ने भारी से भारी विपत्ति सही, धर्म पालन हेतु पत्नी तक को बेच दिया और खुद चाण्डाल के यहाँ नौकरी कर ली।

महाराज युधिष्ठिर के ऊपर अनेक विपत्तियाँ आईं परन्तु उन्होंने कभी धर्म का त्याग नहीं किया। चारों भाइयों और द्रौपदी के गिर जाने के बाद अकेले ही हिमालय पर्वत की ओर जा रहे थे, इन्द्र ने बहुत ही अनुनय विनय किया रथ पर चढ़ने के लिए, परन्तु कुत्ता जो बराबर उनके साथ चल रहा था, उसे छोड़कर रथ पर बैठना उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने इंद्र से कहा - " मैं इस कुत्ते को छोड़कर रथ पर चढ़ना नहीं चाहता "। यह सुनकर यमराज जो कुत्ते के रूप में थे, प्रकट हुए और कहा - " तुमने कुत्ते को अपना भक्त बताकर स्वर्ग का त्याग कर दिया, ऐसा त्याग तो कोई स्वर्गवासी भी नहीं कर सकता है "। वह युधिष्ठिर को रथ पर चढ़ा कर स्वर्ग ले गए। इस तरह स्वर्ग की परवाह न करके अंत तक उन्होंने अपने धर्म का पालन किया।

जो लोग धर्म व ईश्वर को नहीं मानते वह समझते ही नहीं कि धर्म व ईश्वर क्या है ? यही कारण है कि वह इस लाभ से वंचित रह जाते हैं। धर्म क्या है, न इसे जानने की चेष्टा करते हैं और न कोई धर्मग्रंथ ही पढ़ते हैं । उल्टे धर्म का विनाश करने पर तुले हैं। उनका कहना है कि ईश्वर और धर्म के कारण ही गरीबों और दुर्बलों पर अत्याचार हुए और हो रहे हैं। इसी ने जगत का नाश कर दिया है। इस धर्म और ईश्वर की मान्यता के कारण भोले भले लोग लूटे जा रहे हैं।

निःसंदेह कुछ स्वार्थी लोग आजकल धर्म व ईश्वर के नाम पर लोगों को लूट रहे हैं। बहुत से पुजारी, साधु -सन्त भी झूठ का सहारा लेकर शोषण कर रहे हैं। मिथ्या मान बढ़ाई और धनोपार्जन के लिए कथित स्वयंभू साधु सन्त और धर्माधिकारी लोगों को मूर्ख बना रहे हैं। इसीलिए यह तो नहीं कहा जा सकता कि धर्म व ईश्वर झूठे हैं । वास्तव में सत्य से अनभिज्ञ होने के कारण लोग तरह- तरह के पाखण्ड और अत्याचार के शिकार हो रहे हैं। वास्तव में यदि लोगों में धर्म व सर्वव्यापी ईश्वर की सत्ता में विश्वास होता तो इस तरह अत्याचार न फैलता ।

दुःख की बात तो यह है कि धर्मपरायण भारत के लोग भी आज ऐसे हो गए हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है भोगमयी संस्कृति से प्रभावित आज की धर्मविहीन दूषित शिक्षा व ब्राह्मणों द्वारा सभ्यता से हटकर कर्मकाण्डी मार्ग को बढ़ावा देना। यज्ञ, बलिदान और ब्राह्मणों के जटिल कर्मकाण्ड से लोगों में असन्तोष फैल गया। इस तरह सत्य सनातन धर्म से लोग एक तरह से दूर होते चले गए । आज की पीढ़ी तो यह जानती ही नहीं कि सनातन धर्म किसे कहते हैं । ऐसे ही लोग धर्म का मखौल उड़ाते हैं । इस अधर्म और अनाचार के कारण ही भारतवासी दीन दुखी हो रहे हैं। यह अधर्म ही तो है जिसके कारण तरह-तरह की बीमारियाँ और महामारियाँ फैल रही हैं। मनुष्यों की आयु कम हो गयी है । भूकम्प, बाढ़, सूखा आदि दैवी प्रकोपों से मनुष्य दुखी हो रहा है। अधर्म का फल निश्चय ही दुःख है। इतिहास साक्षी है कि धर्म की सदा विजय हुई है। जहाँ धर्म होता है वहीं ईश्वर की मदद मिलती है। महाभारत में गुरु द्रोणाचार्य धर्मराज युधिष्ठिर को विजय का आश्वासन देते हुए कहते हैं

- " यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्ण स्ततो जयः।" (भीमपर्व)

" जहाँ धर्म है वहीं ईश्वर है और जहाँ ईश्वर है वहीं धर्म है।"

अधर्मी हर तरह से जनधन शक्ति से सम्पन्न होते हुए भी धर्म पर चलने वाले से पराजित हुए हैं । रावण, मेघनाद, कुम्भकर्ण, हर तरह से धन जन -शक्ति से सम्पन्न थे, उनके पास

असाधरण उपकरण मौजूद थे, तो भी असत्य और अधर्म पर चलने के कारण भगवान् राम की दया से युक्त वानर द्वारा मारे गए। देर सवेर असत्य और अधर्म पर चलने का परिणाम तो भोगना ही पड़ता है।

धर्म का आश्रय लेकर चलने से मनुष्य में दया, सन्तोष, समता, निर्भयता, वीरता व क्षमा आदि गुणों का विकास होता है। जिस तरह सोना अग्नि में तप कर चमकने लगता है उसी तरह धर्म की तपन में मनुष्य के अवगुण जल जाते हैं और उसका चरित्र सोने की तरह चमकने लगता है। जिस तरह स्वार्थी व्यक्ति अज्ञान के कारण अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगे रहते हैं, उसी तरह धर्मात्मा व्यक्ति समस्त जीवों के हित में लगे रहते हैं। जिस देश में भगवान् कृष्ण, राम, बुद्ध व अन्य सन्तों ने जन्म लिया, उसी देश के लोग आज दुखी और अशान्त हैं। यह बहुत ही लज्जा की बात है। गीता के सोलहवें अध्याय में कहा है कि दैवी सम्पदा रूप धर्म का पालन और आसुरी सम्पदा रूप अधर्म का परित्याग करके ही मनुष्य सुख, शान्ति और परमानन्द को प्राप्त कर सकता है। संसार की प्रत्येक वस्तु वन, पहाड़, नदी, नाले व पशु-पक्षी सबकी रक्षा करना मनुष्य का कर्तव्य है, धर्म है। परमात्मा की श्रष्टि में जड़, चेतन सभी किसी न किसी रूप में एक दूसरे की सहायता कर रहे हैं। इसलिए सबकी यथायोग्य रक्षा करने में ही हमारा हित है। हमारे ऋषि मुनि बड़े ही दूरदर्शी और सर्वज्ञ थे तभी तो वेद के आधार पर कर्तव्य निर्धारण करने वाले स्मृति, पुराणादि शास्त्रों और इतिहास की रचना की जो हर समय और हर काल में हमारे लिए उपयोगी रहे और हैं। हमें उनकी शिक्षा पर ध्यान देना और उनके सिद्धांतों का पालन करना चाहिए। उसी में समस्त मानव जाति का कल्याण है।

मनुष्य स्वभाव से ही केवल अपना हित चाहता है। इसीलिए हमारे ऋषि-मुनियों ने कृपा करके मनुष्य की प्रत्येक चेष्टा को धर्म के साथ जोड़ दिया है, जिससे उसका पालन श्रद्धापूर्वक होता रहे। वर्तमान तथा भविष्य में जो सभी के लिए हितकर हो, वही न्याय, कर्तव्य और वस्तुतः धर्म है। धर्म के अनुकूल चलने में है मनुष्य का मनुष्यत्व, उत्थान और परम् लाभ है। इसके विपरीत आचरण मनुष्यत्व से दूर पतन, अवनति और हानि की ओर अग्रसर करता है। एक बात सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि संसार के साथ ईश्वर का कानून और धर्म भी अनिवार्य रूप से चलता रहता है। इसके बिना कोई जीवित नहीं रह सकता। कोई लाख विरोध करे परन्तु ईश्वरीय कानून और न्याय का विनाश नहीं हो सकता। सत्य तो वही ही जो अविनाशी है, ईश्वर का यह न्याय ही सत्य है। मनुष्य यदि ईश्वरीय न्याय का पालन नहीं करता तो वह न्याय तो जहाँ का तहाँ रहता है, स्वयं मनुष्य का पतन हो जाता है। महाप्रलय

के समय जब सारी श्रष्टि का विनाश हो जाता है तब भी ईश्वरीय कानून एवं धर्म जीवित ही रहता है। ईश्वरीय विधान ही तो है जो श्रष्टि प्रकृति में विलय होकर पुनः प्रकट होती है। संसार में जो कुछ भी घटित होता है वह ईश्वरीय विधान के अन्तर्गत होता है। हम बराबर देखते हैं कि कुछ चीज़ें बराबर विनाश की ओर उन्मुख हो रही हैं और कुछ चीज़ों का उत्थान हो रहा है जिसका संचालक अवश्य ही कोई अद्वितीय शक्ति है। किन्तु अज्ञानवश हम उस शक्ति को बराबर नकारते रहते हैं। यही कारण है कि हम आज दुखी हैं। जब तक हम उस अद्वितीय शक्ति की अवहेलना करते रहेंगे तब तक हमारा भटकना छूटेगा नहीं। अतः उस सर्वशक्तिमान परमात्मा के नियम को अपना धर्म समझकर पालन करें। विश्व में कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ परमात्मा की शक्ति का अस्तित्व न हो।

एक पौराणिक कहानी है - एक ऋषि के दो शिष्य थे। उन्होंने दोनों को एक-एक चिड़िया दी और कहा - " जाओ इसे मार डालो परन्तु ऐसी जगह मारना जहाँ कोई देखने वाला न हो "। पहला शिष्य जंगल में गया और चिड़िया को मार कर आ गया। वह बड़ा खुश था कि गुरु की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। दूसरा शिष्य लौटा तो बहुत उदास था, चिड़िया उसके हाथ में थी। ऋषि ने पूछा - " क्यों क्या हुआ वत्स ! चिड़िया वापस ले आये। " शिष्य बोला - " गुरु जी ! मैं जंगल में गया, वहाँ देखा पेड़-पौधे, वायु, सब देख रहे हैं। फिर नदी तट पर गया, वहाँ जल देवी व आकाश देख रहे थे। फिर जहाँ भी गया कोई न कोई देख रहा था। मुझे कोई ऐसी जगह नहीं मिली जहाँ कोई देखने वाला न हो, और जहाँ कोई देखने वाला नहीं था वहाँ मैं स्वयं था। इसीलिए चिड़िया को मारना सम्भव नहीं था। पहला शिष्य मित्र की बात सुनकर अपनी जीत पर बहुत खुश हो रहा था, तभी गुरुजी बोले - " वत्स ! तुम सत्य कह रहे हो, तुमने हर जगह परमात्मा को मौजूद पाया, निःसंदेह तुम ज्ञान के अधिकारी हो। "

सारांश यह है कि आज का प्रत्येक व्यक्ति प्रत्यक्षवादी हो गया है। अधर्म का फल प्रत्यक्ष तो दीखता नहीं इसीलिए व्यक्ति तरह-तरह के छल-छद्म की रचना करता रहता है। हमारा इतना पतन हो गया है कि हम ईश्वर की सत्ता को मानते ही नहीं, जो लोग मानते हैं उनको हम पाखण्डी और मूर्ख समझते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि आज बहुत से धूर्त और पाखण्डी लोग अपने लौकिक स्वार्थ के लिए झूठा दिखावा कर रहे हैं। लेकिन धर्म और ईश्वर जो सुख शांति का आधार हैं, उस साधन को न वह खुद बढ़ाते हैं और न दूसरों को बढ़ाने का उपदेश देते हैं। यही कारण है कि आज जगत में सर्वत्र हाहाकार मचा है और मानव जाति दुःखाग्नि में जल रही है। धर्म व ईश्वर ही वह शाश्वत सनातन है जिसके आश्रय में सुख व

असीम शान्ति की छाँह मिल सकती है बशर्ते हमारा आचरण शुद्ध व सात्विक हो। ईश्वर में अविश्वास और धर्म के लोप होने के कारण हमारा जीवन पशुओं से भी नीचे स्तर का हो गया है।

अनुज वधु भगनी सुत नारी, सुन सठ कन्या सम चारी !

इन्ही कुदृष्टि विलोकइ जोई, ताहि वधे कुछ पाप न होइ !!

जब धर्म की मर्यादा ही न रह जाएगी तब कौन ऐसे घोर पाशविक कर्मों से किसी को रोकेगा ! माता-पिता, गुरुजनों की अवेहलना होने लगेगी। कितने हैं जो गुरुजन, माता-पिता की सेवा व आदर-मान करते हैं ? जिसको जो अच्छा लगता है उसी को उचित ठहरा कर उसी सिद्धान्तानुसार चलता है।

इन बातों का विश्लेषण करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन सब दुखों की तह में हमारा मन है जो हमें दुखी और सुखी बनाता है। हमने अपने आपको अपने शरीर और मन के अधीन कर रखा है। हम यह भूल जाते हैं कि हमारा यह शरीर जो आज है कल नहीं रहेगा। मन की अवस्था ऐसी है कि हर क्षण बदलती रहती है। अब अगर मनुष्य आनन्द के लिए मन पर निर्भर रहेगा तो वह सुख कैसे पायेगा ? शाश्वत शान्ति पाने के लिए मनुष्य को मन और शरीर की सीमा से ऊपर उठना पड़ेगा। हम कभी विचार ही नहीं करते कि आखिर मन को शक्ति कहीं और से मिलती है। प्रश्न यह उठता है कि शरीर और मन से परे क्या है ? क्या यह नाशवान नहीं है ? वह तो आत्मा के रूप में बैठी परमात्मा का अंश है। वह एक ऐसा तत्व है जिसकी अनुभूति मनीषियों ने की है। मानवता के इतिहास में केवल वे ही हैं जिन्होंने यथार्थ और शाश्वत शान्ति को इस स्थिति पर पहुँच कर प्राप्त किया है। उनका अनुभव सत्य व निर्विवाद है तभी तो उन महापुरुषों ने समाज पर असीम प्रभाव डाला है। आज भी वही प्रभाव काम कर रहा है।

देखा जाए तो मनुष्य स्वभाव सदा से एक सा रहा है। ऐसा नहीं कि पुरातन काल में वह बहुत अच्छा था और आज वह बहुत खराब हो गया है। मनुष्य आज भी अपने स्वजन, पड़ोसी, मित्र आदि के सुख से सुखी और दुःख से दुःखी होता है। आज संचार यंत्रों के द्वारा संसार की खबरें हमें जल्दी मिल जाती हैं, होने वाली अनहोनी घटनाओं से हम जल्द दुःखी हो जाते हैं, दैवी प्रकोपों से बचने के लिए हम प्रार्थना भी करते हैं। ऐसा नहीं है कि संसार दयालु या महान लोगों से शून्य हो गया है। इस संसार में एक ओर लोभी, चोर, कृपण, स्वार्थी और

अत्याचारी लोग हैं तो दूसरी ओर दयालु, निःस्वार्थी, परोपकारी ओर दानशील व्यक्ति भी हैं। मानव मन जितना आज पीड़ा का कारण बना है उतना ही पुरातनकाल में भी था। यह मन ही तो है जिसके कारण महाभारत हुआ। हाँ, यह अवश्य हुआ है कि आज की सभ्यता ने कष्टों में कुछ बढ़ोतरी कर दी है। इन सबसे व्याकुल होकर मनुष्य शान्ति का मार्ग खोजने लगा है। जिस दिन वह यह अनुभव कर लेगा कि इन दुःखों की जड़ मन है तो शायद वह मन पर संयम करके शान्ति पा जाए।

आज धर्म का स्वरूप राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण और भी शोचनीय हो गया है। धार्मिक संस्थाओं ने भी अपने उत्तरदायित्व से मुँह मोड़ लिया है। मठाधीश ईश्वर की शक्ति पर निर्भर न रह करके लौकिक शक्ति का मुँह देखते हैं। निःसंदेह उनका धार्मिक चरित्र कहीं न कहीं निर्बल अवश्य हो गया है तभी तो वे अपनी संस्था की सहायता सम्बल ओर मार्गदर्शन के लिए शासन का मुँह निहारते हैं। **बर्नार्ड शा ने लिखा है - " सभी धार्मिक संस्थाएँ अपने आपको अमीरों के हाथ बेचकर जीवित रहती हैं । "** ऐसी संस्थाएँ भला निर्भय ओर निष्पक्ष होकर कैसे अपने मूलभूत सिद्धांतों पर चल सकती हैं ? यह एक गूढ़ ओर विवादस्पद विषय है, परन्तु फिर भी यह सत्य है कि यदि धर्म को राजनीति से निकाल दिया जाए तो निरंकुशता बढ़ जाएगी। धर्म पर राजनीति का बोलबाला हो जाये तो धर्म का विनाश हो जायेगा। यह एक अभिन्न सामान्य सूत्र है। अतः राजनीतिज्ञ अगर आध्यात्मिक दृष्टिकोण को लेकर सतर्कता से चलें तो बहुत कुछ संसार की भलाई कर सकते हैं। आज संसार की जो स्थिति है उसे देखते हुए यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि राजनीतिज्ञ भ्रष्टाचार से रक्षा ओर संसार को विनाश से तभी बचा सकेंगे जब राजनीति और धर्म के बीच समन्वय का सूत्र स्थापित करें। ऐसा करके वे संस्कृति और सभ्यता के भविष्य का संरक्षण कर सकेंगे।

स्वामी विवेकानन्द का कथन है कि भारत इस गूढ़ मानवीय दर्शन का उदगमस्थल होने के बावजूद स्वयं ही इस वैदान्तिक मानवतावाद को उत्साहपूर्वक तथा व्यापक रूप से अपनाकर अपने स्वयं की मानवीय समस्याओं को हल करने में असफल हुआ है। वह आत्मा के रूप में मानव की महिमा, स्वाधीनता, समानता व स्वाभिमान को रखते हुए एक पूर्ण मानवतावादी समाज-व्यवस्था विकसित करने में असमर्थ रहा है। उन्होंने पाया कि उच्च वर्गों के सतत शोषण व दमन के फलस्वरूप भारत की कोटि-कोटि संख्यक जनता, उन्हीं की दुःखभरी भाषा में ' पशुतुल्य ' हो गयी है - अमेरिका से लिखे एक पत्र में अपने हृदय की व्यथा उड़ेलते हुए वे कहते हैं। (विवेकानन्द साहित्य खण्ड १)

हिन्दू धर्म के समान पृथ्वी पर कोई ऐसा धर्म नहीं है जो इतने उच्च स्तर से मानवता के गौरव का उपदेश करता हो, और पृथ्वी पर कोई ऐसा धर्म नहीं जो हिन्दू धर्म के समान गरीबों, नीच जातियों का गला ऐसी क्रूरता से घोंटता हो। प्रभु ने मुझे दिखा दिया कि इसमें धर्म का कोई दोष नहीं, दोष उनका है जो ढोंगी और दम्भी हैं। जो परमार्थिक और व्यवहारिक सिद्धांतों के रूप में अनेक प्रकार के अत्याचार के अस्त्रों का निर्माण करते हैं।

आज भारत ही नहीं समग्र संसार भौतिकता की अग्नि में जल रहा है, उससे छुटकारा पाने के लिए वह इधर-उधर भटक रहा है। भौतिकवाद से छुटकारा पाने के लिए हजारों वर्ष पहले उपनिषद के मनीषियों ने लिखा है कि अज्ञान ही सब प्रकार के दुःखों का कारण है। अपने जीवन का विश्लेषण सामाजिक या आध्यात्मिक किसी भी रूप का करें हम यही पायेंगे कि मन के प्रभाव में हम नाच रहे हैं। अज्ञान के अधीन हम किसी से घृणा करते हैं। यह हमारा अज्ञान ही है जो हमें एक दूसरे से दूर रखता है। हमारे मन में यह विचार कभी भी नहीं उत्पन्न होता कि हम सभी उसी एक परमात्मा की सन्तान हैं। मनुष्य जब तक दूसरे मनुष्य को अपने जैसा नहीं समझेगा तब तक आपस में प्रेम भाव नहीं होगा। प्रेम एक ऐसी कड़ी है जिसके द्वारा संसार के सभी सुख-शान्ति आपस में एक दूसरे से जुड़े हैं। इसलिए यह ज़रूरी है कि इस रहस्य की कुंजी मनुष्य अपने अन्तर में ही खोजे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रतिपल निध्यासन करना पड़ेगा, अनुभव करते, सोचते और इच्छा करते हुए अपनी विवेक बुद्धि से निर्णय करना होगा कि हमारा कौन सा कृत्य, विचार, भाव पाशिवक है और कौन सी सत्पुरुषों जैसी है।

भारत आध्यात्मिक महत्वाकांक्षाओं का उदगमस्थल है जो धारा धीरे-धीरे समस्त संसार में फैल गयी है। विदेशी आक्रमण और बर्बर जातियों के अत्याचार को यहाँ निरन्तर झेलना पड़ा है किन्तु आपदाओं के बाद भी इसने अपने गौरव और शक्ति को सुरक्षित रखा। इसका कारण है कि यहाँ समय-समय पर भगवान बुद्ध, महावीर, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, कबीर, तुलसी, गुरु नानकदेव और गुरुगोविन्द सिंह जैसे सन्तों का अवतार होता रहा है। उन महापुरुषों ने जाति-पाति के भेद-भाव को भुला कर आपस में एक दूसरे से प्रेम करने का उपदेश दिया है। ऊँच-नीच के भेद-भाव के लिए उनके अन्तर में कोई स्थान नहीं था। उनका धर्म व्यष्टि का न होकर समष्टि का था। उन्होंने सबमें एक ईश्वर के रूप का ही दर्शन किया। रामकृष्ण परमहंस ने तो हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई सभी के सिद्धांतों को आधार मानकर साधना की और ईश्वर के दर्शन प्राप्त किये। गुरु नानकदेव ने तो विशाल हृदय खोलकर हिन्दुओं को ही

नहीं, मुसलमानों को भी गले लगाने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। गुरु गोविन्द सिंह जी ने तो अपने प्रिय कुटुम्बियों का भी रक्त बहा दिया, किन्तु एक भी कटुवचन उनके अधर पर नहीं आये और न ही इसी तरह के असंतोष की भावना ही उस शान्तिप्रिय सन्त के चेहरे पर आये।

हमारे इन सात्विक विचार-भाव का केवल हमारे देश में ही नहीं विदेशों में भी काफी प्रभाव पड़ रहा है। विदेश के लोग भौतिकता की परिधि से निकलने के लिए तड़प रहे हैं। सब तरह की सुख-सुविधा के बावजूद वे लोग अशान्त और व्याकुल हैं। शान्ति की खोज में उनकी प्यासी आँखें भारत की ओर देख रहीं हैं। देखा जाय तो संसार की सम्पूर्ण उन्नति में भारत का योगदान सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि उसने संसार को ऐसे दर्शन और धर्म का दान दिया है जो मानव मन को सदैव एकाग्र रखने वाला सबसे महान, सबसे ऊँचा और श्रेष्ठ मार्ग है।

हमारे प्राचीनतम शास्त्रों ने यह घोषणा की है " *एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति* "। सारे विश्व में परमात्मा एक है, उसी का वर्णन किया है। अतः ऐसे भारत में जहाँ सभी सम्प्रदायों को सदा सम्मानित करते आये हैं, यदि अब भी सम्प्रदायों के बीच लड़ाई-झगड़े, ईर्ष्या-द्वेष बने रहें तो धिक्कार है। हमें शर्म आनी चाहिए जो हम अपने को उन महापुरुषों का वंशधर बताते हैं। सभी धर्मों का सार-तत्त्व तो एक ही है - एक ऐसा धर्म हो जिसमें सारे मत, सम्प्रदाय, मज़हब समा जाएँ। आपस में घृणा, द्वेष-भाव लेश-मात्र भी न रह जाए, चारों ओर प्रेम ही प्रेम का वातावरण रहे।

चित्तौड़ की रानी झाली बाई संत रविदास की महिमा सुनकर काशी आयीं और उनको अपना गुरु बनाया। इसपर पण्डितों में विद्रोह फैल गया और वे रानी को पागल कहने लगे। रानी ने एक सभा में जिसमें सभी पण्डित बुला गए थे, संत रविदास को भी बुलाया। बहुत विवाद हुआ। पण्डित जात-पात पर ज़ोर देते थे और रविदास जी भक्ति पर। अंत में यह बात तय हुई कि भगवान् की मूर्ति को आवाहन करके जो सिंहासन पर बुला लेगा वही बड़ा समझा जाएगा। पण्डितों ने बहुत ज़ोर लगाया, वेद मन्त्र पढ़े, परन्तु मूर्ति अपनी जगह से हिली भी नहीं। अब रविदास जी की बारी आई। उन्होंने गदगद कंठ से भगवान् का आवाहन किया। मूर्ति अपनी जगह से उठकर सिंहासन पर आ बैठी। सब चकित हो गए।

एक बार और चित्तौड़ की रानी झाली बाई ने संत रविदास को अपने घर निमंत्रित किया। ब्राह्मण पण्डित जो निमंत्रण में आये थे, संत रविदास को देखकर बहुत नाराज़ हुए। उन्होंने भोजन करने से इन्कार कर दिया क्योंकि संत रविदास जाति के चमार थे। झाली बाई को बहुत

दुःख हुआ, उन्होंने ब्राह्मणों को समझाने की बहुत कोशिश की परन्तु ब्राह्मण न माने। झाली बाई को परेशान देखकर रविदास जी ने कहा - " आप परेशान न हों, ब्राह्मणों को भोजन करायें। " पण्डित -लोग भोजन पर बैठे तो देखते क्या हैं कि हर पण्डित के बगल में संत रविदास बैठे भोजन कर रहे हैं। वे सब चकित एवं लज्जित हो गए। वे अपनी भूल समझ गए कि ऊँच-नीच का यह भेद-भाव केवल विचारों का है। हम सबमें विराजमान प्रभु को नहीं देखते, और न यह सोचते हैं कि सबको बनाने वाला परमात्मा एक है और सबमें उसी परमात्मा का अंश है ।

0000000000

हिन्दू धर्म -- सनातन धर्म

भारत वह प्राचीन भूमि है जहाँ विश्व का सबसे प्राचीनतम धर्म - हिन्दू धर्म का उदय हुआ जिसे सनातन धर्म भी कहते हैं। 'सना' से अभिप्राय है ' जो सदा रहे'। 'धर्म' का अर्थ है जगत को धारण किये हुए है। सनातन धर्म अमर है। तत्व ज्ञान के महत्व को सबसे पहले भारत में ही समझा गया। चिरन्तन हिमालय के उठे हुए श्रेणीबद्ध हिमशिखरों से बहती समुद्राकर नदियों, घने जंगलों, और उपजाऊ भूमि के कण-कण में आध्यात्मिक प्रवाह हो रहा है। यह वही पवित्र भारत भूमि है जहाँ संसार के सर्वश्रेष्ठ ऋषियों की चरण रज पड़ चुकी है। यहीं सबसे पहले मनुष्य में प्रकृति तथा अन्तर्जगत के रहस्योदघाटन की जिज्ञासाओं के अंकुर उगे थे। यहीं सबसे पहले सनातन पुरुष की शीतल छाया में सनातन धर्म का आनन्द जीव ने लिया था। आत्मा का अमरत्व, अन्तर्यामी ईश्वर, जग प्रपंच तथा मनुष्य के भीतर सर्वव्यापी परमात्मा विषयक मतवादों का पहले -पहल यहीं उदभव हुआ था, और यहीं धर्म ने चरम उन्नति की। यह वही भारत भूमि है जहाँ से उमड़ती हुई बाढ़ की तरह धर्म तथा दार्शनिक तत्वों ने सारे संसार को सींचा है। पुनः ऐसी ही तरंगे उठकर निस्तेज जातियों में शक्ति और जीवन का संचार कर देंगी। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है ।

The Indian Nation cannot be killed, deathless it stands.

सचमुच ही शताब्दियों से विदेशियों के आक्रमण, आघात, आचार-व्यवहार को सह कर भी भारत अजेय, अक्षय बना हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि यह संतों-ऋषियों के केवल उपदेशों पर निर्भर नहीं रहा बल्कि प्रत्यक्षज्ञान की अनुभूति पर निर्भर रहा है । मनुष्य, प्रकृति तथा अन्तर्जगत का यह वह प्रत्यक्षज्ञान है जिसकी बराबरी पाश्चात्य देशों के दर्शन और विचारधारा से नहीं की जा सकती है । भारत में विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय और मत हैं जिन्हें भारत के मूल प्राचीन आध्यात्मिक तत्वों और सिद्धांतों से ही प्रेरणा मिली है । सभी के दार्शनिक और नैतिक सिद्धांत एक हैं। एकेश्वरवाद आत्मा के अमरत्व, कर्म, पुनर्जन्म, मायावाद, मोक्ष, निर्वाण, भक्ति आदि सिद्धांत सभी धर्मों की जड़ में स्पष्ट रूप से विद्यमान हैं। भारतीय जीवन में इन सभी की व्यापकता स्पष्ट है। धार्मिक संस्कार विधियां और कर्मकाण्ड में भी व्यापक समानता है। प्राचीन धर्मग्रंथों, शास्त्रों को हम सभी आदर की दृष्टि से देखते हैं। वेद भारत का आदिग्रन्थ हैं जिसमें ऋषियों के अमरत्व अन्तर्यामी ईश्वर व अमरत्व की अनुभूतियों का आख्यान है । वेद चार हैं - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद ।

वेदों में अपूर्व कवित्व, उदात्त चित्रण तथा उच्चतम भावसमूह के अनन्त उदाहरण हैं। उनकी प्रत्येक बात साक्षात् हृदय में उतर जाती है। उनके समझने में कहीं भूल होने की सम्भावना नहीं है। वेद में प्रकृति की अनेक शक्तियों - सूर्य, चन्द्रमा, सागर, वर्षा व उषाकाल का गुणगान है। उन्होंने प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को वाह्य जगत में कार्यरत देखा। कुछ से वह भयभीत हुए और कुछ से आश्चर्यचकित व प्रभावित हुए, जिसका पारस्परिक सम्बन्ध और एकता अन्तर्ज्ञान की जागृति में व्याप्त है। धार्मिक अनुष्ठानों को यज्ञधारा मानवशक्ति को ईश्वरीय शक्ति में मिला देने की व्याख्या है। भजन, पूजा, शादी-विवाह, सन्तान, शिष्य, पशु-पक्षी, वनस्पति, आदि की रक्षा करना, उन्नति और सबकी सफलता के लिए चेष्टारत रहना ही धर्म है। स्तुति और प्रार्थना मुख्य थी, जिनके लिए ऋचायें थीं और उनको गाकर ही देव स्तवन होता था। वास्तव में यह एक आश्चर्य की बात है कि हजारों वर्षों तक वेद पिता से पुत्र में केवल स्मरणशक्ति द्वारा ही चलते रहे हैं। यही कारण है कि समय-समय पर उनमें समयानुसार नवीन और मनोकूल विचारों का समावेश होता गया।

वेदों के श्रव्य जीवनधारा में भी एक निश्चित ज्ञान शब्द (नाद) का मिलता है। निःसन्देह उस समय के लोग पवित्र नाद के विशेष स्थिति के सर्वज्ञ थे। यही वह नाद है जो आध्यात्म में सदा प्रेरणादायक होता है। सन्तों का मार्ग छठे चक्र यानि आज्ञा चक्र से प्रारम्भ होता है। हमारे रामाश्रम सत्संग की साधना का मुख्य आधार यह 'नाद' ही है जिसे 'सुरत शब्द योग' कहते हैं। इस शब्द साधना के लिए समय के पूरे संत सद्गुरु की आवश्यकता पड़ती है। बिना उसकी कृपा के यह साधना असम्भव है। समय के साथ-साथ धार्मिक जीवन में अत्यधिक गहरा परिवर्तन हो गया। नवीन विचारधाराओं, क्रियाविधियों और परम्पराओं का प्रादुर्भाव हुआ। धार्मिक परिवर्तन के साथ पूजा विधि में भी परिवर्तन हुआ जिसके कारण कर्मकाण्ड के आडम्बरीय तामझाम में 'सुरत शब्द योग' साधना प्रायः लोप सी हो गयी।

वैदिक युग के बाद सामाजिक एवं धार्मिक जीवन अधिकाधिक जटिल होता गया। वेदों को आधार मानकर प्रचलित विचारधाराओं का सहारा लेकर उपनिषदों की रचना हुई। अब केवल एक सौ आठ उपनिषद सुरक्षित रह पाए हैं बाकी इसी का पता नहीं। इस वेदान्त की प्रकाश तरंगें उठ-उठ कर समय-समय पर पश्चिम व पूर्व की ओर फैलती रहीं। यूनान वालों पर सांख्य दर्शन का काफी प्रभाव पड़ा। सांख्य व भारत के अन्य सब दार्शनिक मत उपनिषदों व वेद पर प्रतिष्ठित हैं। भारत का कोई सम्प्रदाय उपनिषदों का प्रमाण न माने तो वह सनातन मत नहीं है। आज के युग में वेदान्त का प्रचार अत्यन्त आवश्यक हो गया है। उपनिषदों की तो मूल

शिक्षा ही यही है कि सुख और शान्ति की प्राप्ति के लिए अपना 'स्व' को समाप्त कर दो। उपनिषद् में कर्मकाण्ड का विरोध करते हुए कर्म को अज्ञान तथा अन्धकार की श्रेणी में ठहराया है। इसका कारण शायद यह हो कि बिना सोचे विचारे ही कर्मकाण्ड में बलि जैसी कुप्रथा प्रचलित हो गयी। उपनिषद् में बलि के विषय को भली प्रकार समझाया गया है जिसका सम्बन्ध ज्ञान से है और ज्ञानकाण्ड का प्रारम्भ यहीं से हुआ है। उपनिषदों में भी विभिन्न प्रकार के तर्क-वितर्क किये गए हैं अतः उनमें आपस में भी सहमति नहीं है। इस असहमति को दूर करने के लिए पादरायण ने अपने ग्रन्थ वेदान्तसूत्र में सारे उपनिषदों के विचारों की एकता प्रदर्शित की है। वेदान्तसूत्र का दूसरा नाम ब्रह्मसूत्र है जिसकी मूल रचना करने वाले महर्षि वेद व्यास जी हैं। उपनिषदों का ज्ञान अधिकतर वैराग्य से सम्बन्ध रखता है। अनेक शाखाओं वाले महान वट बृक्ष के समान हिन्दू धर्म वेदान्त के प्रभाव से ही खड़ा है। परोक्ष या अपरोक्ष रूप से हम वेदान्त का ही विचार करते हैं। यही हमारा जीवन है, सांस है। मृत्यु तक हम वेदान्त के ही उपासक हैं और हर भारतीय के लिए यह आवश्यक भी है। इसीलिए विशेषतः आज के युग में इसका प्रचार करना अतिआवश्यक हो गया है। भारत में जितने भी सम्प्रदाय हैं सबको उपनिषदों का प्रमाण मानकर चलना होगा।

एको सत्य विप्रा वदन्ति

सत्य (ईश्वर) एक है और उसी का अस्तित्व है, जिसे ऋषियों ने अनेक नामों से पुकारा है। वैदिक दर्शन की यह कुंजी है जिससे उसे समझना आसान हो जाता है। उस एक परम् सत्ता का अस्तित्व ही सत्य है। सभी सांसारिक तत्वों के पीछे उसी देवत्व का अस्तित्व है और उसी से नैतिकता का आधार प्रस्तुत होता है। कभी किसी को कष्ट नहीं देना चाहिए। संसार का जो भी द्रष्टव्य है उसमें उसी परम् सत्ता का रूप देखना चाहिए। समस्त विश्व मौलिक स्तर पर एक है इसीलिए हर प्राणी से हमारा प्रेम होना चाहिए। मनुष्य में जब यह भावना आ जाती है और वह परमात्मा की हर रचना में उसी का दर्शन करने लगता है तब अज्ञान का पर्दा हट जाता है, और मनुष्य अपने आपको पहचान लेता है। जीवन काल में ही उसे यह अनुभव हो जाता है कि उसमें और संसार में कोई अन्तर् नहीं है। कुछ देर के लिए तो ऐसे व्यक्ति के लिए जगत का कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता। तब वह कुछ और नहीं देखता, देखता है केवल वही दिव्य प्रकाश और सुनता है वही दिव्य नाद। इस दिव्य प्रकाश की अच्छाइयाँ और बुराइयाँ सभी को जब तक देखने-सुनने का अभ्यास नहीं होगा तब तक सत से मिलन नहीं हो सकता। इस परम् सत्ता का आधार प्रेम है जो जीव को प्रकाश मन्दिर में एकत्रित कर देता है। वेदों की

शिक्षा भी यही है कि अन्तर्जगत की गहराइयों को देखो, स्वयं से प्रेम करो । इसीलिए गीता में कहा है कि जहाँ -जहाँ मन जाए वहाँ से लौटा कर उसे आत्मचिन्तन में लगाना चाहिए तभी परम् सत्ता का अनुभव होगा और प्रेम की बढ़ोतरी होगी ।

यतो यतो निश्चरति मनः चंचलम स्थिरम

सच्चाई के साथ यदि देखा जाए तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि सब धर्मों का आधार एक ही है और वह है 'प्रेम' । कितने मुसलमान संत थे जिन्होंने हिन्दुओं से शिक्षा ली और आगे अपना हिन्दू शिष्य बनाया । गुरु नानकदेव जी के शिष्यों में मुसलमान भी थे। राधास्वामी, कबीरदास, गाँधी जी आदि सब संत ही थे जिन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जीवन भर काम किया। धर्म को एक संकीर्ण परिधि में बाँध देना ओछापन है । जिसमें ' मैं-मेरा ' की बू आ गयी उसे धर्म कहना सही मायने में धर्म का अपमान करना है। गुरुदेव परमसन्त डॉ० श्रीकृष्ण लालजी महाराज कहा करते थे - " हमारा रास्ता प्रेम का रास्ता है । मैं किसी बंदिश को नहीं मानता । मैं तो एक प्यार का रिश्ता जानता हूँ ।" (संत वचन भाग) वास्तव में वे महान थे ।

हमारे गुरु महाराज कहते थे - " सब एक ही चीज़ है, फ़र्क सिर्फ शब्दों का है। मुसलामानों में जहाँ तक शरीयत (इन्द्रियों की शुद्धि) है, उसमें फर्क है, तरीकत में फर्क है, पर जहाँ हकीकत का सबाल है वह एक ही है। हमने तो यह देखा है कि इखलाक (आचरण) को बनाने के लिए किसी एक तरीके को ले लो चाहे वह वेदशास्त्र का हो या कोई और जब हकीकत पर आ जाओ तो औरों के तरीके को देखो। आखिर सब एक सा ही पाओगे। लालाजी (परमसन्त महात्मा रामचन्द्र जी महाराज) के पास सभी धर्मों के अनुयायी आया करते थे। क्रिश्चियन लोग भी सलाह लेने आते थे । " (संत वचन भाग ४)

धर्म की विशद विवेचना और उसके सार तत्व की एकता पर बोलते हुए हमारे गुरुदेव डॉ० श्रीकृष्ण लाल जी ने अपने स्वयं के अनुभव को इस प्रकार बताया है - " प्रेम के द्वारा ही उन्होंने (पूज्य लालाजी ने) मुझे रास्ता दिखाया था । वैसे तो मुझे उनके पास बैठने में ही बड़ा आनन्द आता था, पर जब मुझे मालूम हुआ कि सत्संग में उपदेश भी मिलता है तो मैंने उनसे निवेदन किया - "लालाजी आप औरों को उपदेश देते हैं, शिष्य बनाते हैं, मुझे भी बना लें ।" उन्होंने कहा कि तुम मौलवी अब्दुल गनी साहब के पास जाओ और उनसे उपदेश लो । मैंने निवेदन किया कि "आप अपना शिष्य बनायेंगे तो उपदेश लूँगा और किसी के पास नहीं जाऊँगा ।" खैर, कृपा करके उन्होंने मुझे क़बूल कर लिया। एक सज्जन जिनका नाम अब्दुल सलाम था,

लालाजी के पास जाते थे । वे मेरे दोस्त थे । आर्यसमाजी विचारों का होने के कारण मैं उन साथ पान तक नहीं खाता था । जब उन्हें मालूम हुआ कि मैंने उपदेश ले लिया है तो वे बोले कि तुम अब मुसलमान हो गए हो, नाम बदल लो। उन्होंने ऐसा इसलिए कहा क्योंकि हमारे इस सत्संग के पूर्वज इस्लाम धर्म के थे । मैं घर आकर हाथ पर रख कर रोटी खाने लगा। पानी चुल्लू से पी लेता था। मैंने ये सब बातें पत्र में लिखकर गुरुदेव को भेज दीं और आज्ञा मांगी कि अब मैं मुसलमान हो गया हूँ, कहिये तो नाम बदल लूँ । गुरुदेव बेचारे आधी रात को चलकर मेरे पास आये। उन दिनों मैं बोर्डिंग हाउस में रहता था। मेरे पत्र से वे परेशान हो गए थे। वे आते ही बोले " मैं इसी वजह से कहता था कि अभी उपदेश मत लो। तुम जान देने लगे तो मैंने तुम्हें अपना लिया। अब मैं तो तुम्हें नहीं छोड़ूँगा, तुम भले ही छोड़ दो। " मैंने निवेदन किया - " मैं नहीं जानता मेरे लिए क्या ठीक है। आप जो समझें वो कीजिये।" उन्होंने कहा - "तुम अभी बच्चे हो, समझते नहीं हो, हम ठीक कर लेंगे ।"

शनैः शनैः एक घृणा जो दिल में थी अन्य धर्मों के प्रति वह दूर हो गयी और धर्मों का एकत्व स्पष्ट ही समझ में आ गया। सन्त लोग धार्मिक कर्मकाण्ड के बन्धन से कितने ऊँचे होते हैं । उनमें हिन्दू, मुसलमान या अन्य धर्मों के प्रति कोई भेद-भाव नहीं होता। वे तो सभी को एक समान समझते हैं। इन सब कर्मों को वे रास्ते के बन्धन मानते हैं। उनका असली धर्म तो परमात्मा है। उस तक पहुँचने के लिए वे कुछ भी करने को तैयार रहते हैं। सब की सेवा ईश्वर जानकर करो। यह दुनियाँ उसका विराट रूप है। बिना किसी भेद-भाव के, अच्छाई- बुराई का ख्याल छोड़कर सेवा करो, यह सोचकर कि बिना ईश्वर की मर्जी के एक पत्ता भी नहीं हिलता।

तनुस्ततो नियम्यै तद आत्मन्येव वंश न येत !!

वेदान्त यह भी बताता है कि समाज और कर्म के क्षेत्र में जो शक्ति प्रदर्शित होती है, वह भीतर से बाहर आती है । अन्य सम्प्रदाय उसे अन्तःप्रेरणा कहते हैं। लेकिन वेदान्त उसे मनुष्य की वाह्य प्रेरणा कहता है, किन्तु फिर भी वह किसी की आलोचना नहीं करता। वह उन लोगों की भी आलोचना नहीं करता जो मनुष्य की इस दिव्यता को नहीं पहचानते। ज्ञात या अज्ञात रूप से हर व्यक्ति इस दिव्यता को व्यक्त करने की चेष्टा कर रहा है ।

वेदान्त का यह कहना है कि धार्मिक अंतःप्रेरणा केवल एक ही नहीं हुई है और न केवल दिव्य मानव का आविर्भाव ही एक हुआ है चाहे वह कितना महान क्यों न हो । उस अनन्त एक

का मानव स्वभाव में प्रकाशन हुआ, जिसे नैतिकता, परोपकार, सदाचार कहते हैं, वह सब उसी एकत्व का प्रकाश है। यह वो एकत्व ही है जिसे हर मनुष्य कभी न कभी अनुभव करता है कि वह विश्व के साथ एक है और जाने अनजाने तदात्म्य स्थापित करने के लिए विकल हो उठता है। यही प्रेम या सहानुभूति है। यही नैतिकता और सदाचार का आधार है। यही वेदान्त के विख्यात सूत्र 'तत्त्वम असि' तू वही है को संक्षेप में कहा गया है। समय परिवर्तन के साथ-साथ वेदान्त द्वैत और अद्वैत दो भागों में बट गया। वैदिक कर्मकाण्ड का भारत में प्रायः लोप ही हो गया। आज हमारा जीवन बहुत कम वैदिक कर्मकाण्ड के अनुसार नियमित और अनुशासित होता है। द्वैतवाद और अद्वैतवाद के अतिरिक्त अनेकवाद वेदान्ती नाम के भीतर पनप गए। उत्तर भारत के प्रसिद्ध द्वैतवादी दार्शनिक रामानुज हुए। माधवाचार्य चैतन्य भी इन्हीं के मतावलम्बी रहे हैं। रामानुज का कहना है कि तीन पदार्थ नित्य हैं - ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति। सभी जीवात्मा नित्य हैं। परमात्मा के साथ उनका भेद सदा बना रहेगा, उनकी स्वतंत्र सत्ता का लोप नहीं होगा। रामानुज का कहना है कि तुम्हारी आत्मा हमारी आत्मा से अनन्तकाल के लिए पृथक रहेगी और यह प्रकृति भी चिरकाल तक पृथक रूप से विद्यमान रहेगी क्योंकि उसका अस्तित्व वैसे ही सत्य है जैसे जीवात्मा और ईश्वर का अस्तित्व। परमात्मा सर्वत्र अन्तर्निहित है और आत्मा का सारत्व है। ईश्वर अन्तर्यामी है। इसी अर्थ को लेकर कहीं-कहीं रामानुज परमात्मा को जीवात्मा से अभिन्न - जीवात्मा का सारभूत पदार्थ बताते हैं। रामानुज का कहना है कि जिस कर्म से आत्मा की स्वाभाविक पवित्रता और पूर्णता का संकोच हो वह अशुभ है, जिससे उसका विकास हो वह शुभ है। (वेदान्त से - स्वामी विवेकानन्द)

शंकराचार्य के शिष्य दक्षिण भारत और उत्तर दोनों क्षेत्रों में अद्वैतवाद के प्रचारक रहे हैं। इन्होंने ईश्वर को सच्चिदानन्द के विशेषण से पुकारा है, परन्तु उपनिषदों में ऋषियों ने और भी आगे चलकर कहा है कि ' नेति-नेति ' यह नहीं, यह नहीं । अर्थात् उपनिषद्काल में जो ऋषि साधना द्वारा जहाँ तक पहुँचे वहीं पर नेति-नेति कहा लेकिन यह कभी नहीं कहा कि यही अन्त है । शंकराचार्य के अनुसार आत्मा परमात्मा एक है ।

गीता

भारत में उपनिषदों के बाद कई अन्य दर्शनों का जन्म हुआ । किन्तु व्यास जी द्वारा लिखे वेदांत दर्शन के सामने कोई दूसरा दर्शन स्थान न ले सका । दार्शनिक विषयों का महान विख्याता कपिल के दर्शन का प्रभाव संसार में प्रायः सभी जगह है । उनके दर्शन को फेर बदल कर प्रायः सभी सम्प्रदायों ने अपनाया है । व्यास सूत्रों के बाद विश्वप्रसिद्ध गीता का प्रमाण है।

शंकराचार्य की प्रतिष्ठा गीता के प्रचार प्रसार से हुई है, अन्य सन्तों ने भी गीता का सहारा लिया है। उपनिषद् अधिकारी मनुष्यों के काम की चीज़ है। ब्रह्मसूत्र विद्वानों के काम की चीज़ है। परन्तु भागवत गीता और रामायण भारतीय नीति और दर्शन के दर्पण हैं। साधारण मनुष्य के लिए ये धर्म के मूल स्रोत हैं। महाभारत समस्त दर्शनों का सार, स्मृतियों का विवेचन ग्रन्थ एवं पंचमवेद माना गया है। इसमें विविध उपाख्यानों द्वारा लोकधर्म के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डाला गया है। गीता और रामायण गृहस्थ जीवन के उन उज्ज्वल व उच्च आदर्शों को लोकप्रिय और मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत करते हैं जिनकी जड़ सदियों से भारतीय विचारधारा और अनुश्रुति में दृढ़ हो गयी है। जन साधारण के लिए ये ग्रन्थ सामाजिक और धार्मिक आचार-विचार के मेरुदंड और संस्कृति के प्राण रहे हैं। गीता के अनुसार तपस्या व वैराग्य का मार्ग ही आवश्यक नहीं है, परन्तु स्वधर्म पालन भी आवश्यक है। मोक्ष नैतिक आचरण में नहीं, भक्ति में है और भक्ति में धर्म-जाति, स्त्री-पुरुष का कोई भेद-भाव नहीं है। इसके अतिरिक्त सब कुछ भगवान् का समझ कर, आसक्ति तत्व फल की इच्छा का त्याग करके, सभी भगवान् को अर्पण करके, कार्य करें, यही निष्काम कर्म है। पुरस्कार का विचार किये बिना ही कर्म करना सत्य मार्ग है। गीता में श्री कृष्ण ने कहा है कि निष्काम कर्म करना ही मनुष्य का धर्म है और इसी से मोक्ष की प्राप्ति होती है। कर्तव्यों का पूर्ण पालन करने से मुक्ति और ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति होती है।

गीता में किसी समुदाय की न तो प्रशंसा है न ही निन्दा है। उसमें तो उस वास्तविक तत्व का वर्णन है जो इस परिवर्तनशील प्रकृति और प्रकृतिजन्य पदार्थों में सदा-सर्वदा एक रस रहने वाला है। अतीत, देशकाल, वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति में सर्वदा एक सा विद्यमान रहता है। मनुष्य प्रकृति-जन्य वस्तुओं के प्रभाव से, व्यक्ति उसका अनुभव नहीं कर पाता है क्योंकि राग द्वेष का उस पर पर्दा पड़ा होता है। गीता का मुख्य ध्येय यही है कि मनुष्य चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय का हो अपने कल्याण के लिए सोचे। मानव योनि में जन्म लेने का यही एक उद्देश्य है। परमतत्व प्रत्येक परिस्थिति में समान रूप से विद्यमान है। अतः साधक के सामने कोई भी परिस्थिति आये केवल उसका सदुपयोग करना चाहिए। वैसे देखा जाये तो सच्चाई यह है कि दुःख आता ही मनुष्य की भलाई के लिए है। यह मनुष्य के लिए परमात्मा द्वारा दिया गया वरदान है। दुःख में सुख की इच्छा का त्याग करना और सुख में सुखभोग की इच्छा बराबर बनी रहे इसका त्याग करना, दूसरों की सेवा में अपने को लगा देना। इस विचार

करने से मनुष्य सुखदायी और दुःखदायी परिस्थितियों से ऊपर उठ जाता है और उसका कल्याण हो जाता है।

समता का अनुभव करने के लिए गीता में तीन योग का वर्णन है - कर्मयोग, ज्ञानयोग व भक्ति योग। स्थूल, सूक्ष्म और कारण ।

कर्म योग

जीव में एक तो चेतन परमात्मा का अंश है और एक जड़ प्रकृति का अंश है। चेतन अंश की मुख्यता से वह परमात्मा की इच्छा करता है और जड़ अंश की मुख्यता से वह संसार की इच्छा करता है। इन दोनों इच्छाओं में परमात्मा की इच्छा पूरी होने वाली है पर संसार की इच्छा कभी पूरी होने वाली है ही नहीं। कुछ सांसारिक इच्छाएं पूरी होती दीखने पर भी वास्तव में उनकी निवृत्ति नहीं होती। संसार की प्राप्ति की इच्छा कर्म के अधीन है परन्तु परमात्मा प्राप्ति की इच्छा कर्म के अधीन नहीं है।

कर्म योग में दो बातें मुख्य हैं (१) कर्तव्य कर्मों का आचरण (२) कर्तव्य कर्मों के विषय में विशेष जानकारी । यद्यपि पुराणों और उपनिषदों में भी कर्मयोग का वर्णन आता है लेकिन गीता में वर्णित कर्मयोग के समान सांगोपांग और विस्तृत नहीं है। जिस तरह सूर्य चलते रहते हैं और लोगों को प्रकाश प्रदान करने पर भी खुद निर्लिप्त रहते हैं, ऐसे ही साधकों को भी परिस्थितियों के अनुसार अपने कर्तव्य कर्मों का पालन करते रहना चाहिए। कर्मयोग गृहस्थों की खास विद्या है । गृहस्थाश्रम में रहते हुए ही मनुष्य कर्तव्य कर्मों का पालन करते हुए परमात्मा प्राप्ति कर सकता है। क्रियाओं और पदार्थों में राग होने से अर्थात् उनके साथ अपना सम्बन्ध मानने में कर्मयोग नहीं हो पाता। कर्तव्य सदा निष्काम और परहित भाव से किया जाता है ।

यह सिद्धांत है कि जब तक मनुष्य अपने लिए कर्म करता है तब तक उसके कर्म की समाप्ति नहीं होती, उलटे वह कर्मों में बँधता जाता है । जो अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए कर्म करता है वह स्वयं तो अपनी हिंसा (पतन) करता ही है, दूसरों की भी हिंसा करता है । जो अभाव वश बहुत सारी भोग सामग्री देखा-देखी नहीं खरीद पाते वह दुःखी होते हैं । ठीक इसके विपरीत पारमार्थिक मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को देख कर दूसरों को स्वतः शान्ति मिलती है । निष्कर्ष यह निकलता है कि निष्काम कर्म से ही परम् कल्याण हो सकता है ।

ज्ञान योग न ही ज्ञानेन सदंश पवित्र मिहं विद्यते !

तत्त्वस्वयं योगसंसिद्ध कालेनात्माति विदन्ति !!

इस मनुष्य लोक में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला दूसरा कोई साधन नहीं है । जिसका योग भली भांति सिद्ध हो गया है, वह कर्मयोगी उस तत्त्वज्ञान को अवश्य ही स्वयं अपने आप में पा लेता है ।

संसार की स्वतंत्र सत्ता को मानने से तथा उससे सुख लेने की इच्छा से ही सम्पूर्ण दोष पाप उत्पन्न होते हैं। तत्त्वज्ञान होने पर जब संसार की स्वतंत्र सत्ता ही नहीं रहती तब सम्पूर्ण पापों का सर्वथा नाश हो जाता है और महान पवित्रता आ जाती है। इसलिए संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला दूसरा कोई साधन नहीं है ।

भक्ति योग

सर्व कर्मण्यापि सदा कुर्वाणो मदयपाश्रयः !

मतप्रसादादवा प्रोति शाश्वतं पदमव्ययम् !!

मेरा आश्रय लेने वाला भक्त सदा सब कर्म करता हुआ भी मेरी कृपा से शाश्वत अविनाशी पद को प्राप्त हो जाता है । चित्त से सब कर्म भगवान के अर्पण करने से संसार से नित्य वियोग हो जाता है और भगवान् के परायण होने से नित्ययोग (प्रेम) हो जाता है, नित्य योग में वियोग, वियोग में नित्ययोग और संयोग में वियोग। ये चार अवस्थायें चित्त की वृत्तियों को लेकर होती हैं। जैसे - श्री राधा और कृष्ण का परस्पर मिलन होता है तो वह 'नित्ययोग' में योग है। मिलन होने पर भी श्री जी में ऐसा भाव आ जाता है कि 'प्रियतम कहीं चले गए हैं ' और वह एकदम कह उठती हैं कि " प्यारे, तुम कहाँ चले गए ?" तो वह 'नित्ययोग' में 'वियोग ' है। श्यामसुन्दर सामने नहीं हैं पर मन में उन्हीं का गाढ़ चिन्तन हो रहा है और वे मन से प्रत्यक्ष मिलते हुए दीख रहे हैं तो यह ' वियोग में नित्य योग ' है । श्यामसुन्दर थोड़े समय के लिए सामने नहीं आये तो मन में ऐसा भाव आ रहा है कि बहुत समय हो गया, क्या करूँ ? कैसे मिलूँ ? यह ' संयोग में वियोग ' है ।

वास्तव में चारों अवस्थाओं में भगवान् के साथ ' नित्ययोग ' ज्यों का त्यों बना रहता है, वियोग कभी होता ही नहीं। इसी ' नित्ययोग ' को 'प्रेम' कहते हैं क्योंकि प्रेम में प्रेमी और प्रेमास्पद दोनों अभिन्न रहते हैं, वहाँ भिन्नता कभी हो ही नहीं सकती। प्रेम का आदान प्रदान करने के लिए भक्त और भगवान में संयोग और वियोग की लीला चलती रहती है। भागवत गीता के अनुसार मानव विधाता की सर्वोत्कृष्ट रचना है । यह जीव ईश्वर का ही सनातन अंश है। प्रकृति का एक ऐसा नियम है कि जो वस्तु जिससे उत्पन्न होती है उसी में विलीन हो जाती है। अंश का लक्ष्य अपने अंशी की ओर बढ़ना होता है। जीव ईश्वर का अंश है । उसे अपने परम्पिता परमेश्वर को प्राप्त करना है। जब तक वह उसे प्राप्त नहीं कर लेता तब तक उसे चैन नहीं मिलता । स्पष्ट है कि यह दुष्कर कार्य केवल मनुष्य ही कर सकता है। उपनिषदों में शान्ति के लिए ' वानप्रस्थ आश्रम के लिए ज़ोर दिया गया है जबकि गीता का उपदेश पूर्ण रूप से भिन्न है। गुरु श्री कृष्ण और शिष्य अर्जुन दोनों ही युद्ध क्षेत्र में हैं। शंख नाद हो गया । अर्जुन अपने ही सम्बन्धियों को देखकर मोहग्रस्त हो गया । मोह से निवृत्ति दिलाने के लिए भगवान् कहते हैं - " ओ अर्जुन ! असत वस्तु का तो अस्तित्व नहीं है और सत का अभाव नहीं है । नाश रहित तो उसको जान कि जिससे यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है । अविनाशी का विनाश करने का किसी में सामर्थ्य नहीं है। यह आत्मा न मरती है न मारी जा सकती है । यह आत्मा न किसी काल में जन्मी है न मरती है । यह अजन्मी, नित्य, शाश्वत और पुरातन है । शरीर के नाश होने पर भी यह नाश नहीं होती। तो हे अर्जुन ! बता भला कौन किसको मारता है और कैसे किसको मारता है?

श्रीकृष्ण कहते हैं - " हे अर्जुन ! तू सब समय में निरन्तर मेरा ध्यान कर, और युद्ध कर। इस प्रकार मेरे में अर्पण किये हुए मन, बुद्धि से युक्त हुआ निःसन्देह मेरे को प्राप्त होगा । " परमेश्वर के ध्यान के अभ्यासरूप योग से युक्त, अन्य तरफ न जाने वाले चित्त से निरन्तर चिन्तन करता हुआ पुरुष परम्पदिव्य पुरुष अर्थात् परमेश्वर को ही प्राप्त होता है । इस प्रकार अनासक्त भाव से सभी कार्यों को करते हुए परमात्मा में अपने को लय कर देने की शिक्षा गीता से मिलती है । प्रत्येक मनुष्य का हृदय कभी न कभी कुरुक्षेत्र बन जाता है जहाँ स्वार्थ व धर्म और कर्तव्य का संघर्ष होता है। सब कभी ऐसा संघर्ष व संकट उत्पन्न होता है गीता उसका निराकरण उपलब्ध कराती है ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान्म सृजाम्यहम् ॥४-७॥

श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि धर्म की प्रवृत्ति के लिए एवं अन्याय तथा अनाचार का नाश करने के लिए विष्णु भगवान् बार-बार अवतार लेते हैं। हिन्दू धर्मग्रंथों में अनेक अवतार के विषय में वर्णन है। विष्णु के दशावतार का हिन्दू धर्म पर व्यापक प्रभाव है ।

भक्तिवाद

भक्तिवाद को वैसे तो एक अलग धर्म की मान्यता दी जाती है परन्तु इसकी उत्पत्ति सनातन धर्म से ही हुई है। एक नवीन चेतना के रूप में जिस वक्त यह प्रवाहित हुई है उस समय देश की धार्मिक व सामाजिक स्थिति बहुत ही डाँवा-डोल थी। मुस्लिम समाज और उनके द्वारा होने वाले बार-बार के हमलों के फलःस्वरूप भक्तिवाद का जन्म हुआ। इस काल के सन्तों ने संस्कृत भाषा के स्थान पर स्थानीय भाषा में रचना की। कट्टर जाति-पाति के विरोध में भक्तिवाद का उदय हुआ और इसमें सभी जाति के लोग थे। मुस्लिम सूफी सन्त भी थे। उनका आदेश किसी जाति विशेष के लिए न होकर सर्वसाधारण के लिए था । मोईनुद्दीन चिश्ती, रामानन्द, बहुत से पुरातन विचारों के तत्वों को हटाने में सफल हुए । गुरु रविदास जाति के चमार थे, रामानन्द के प्रायः सभी शिष्य छोटी जाति के थे । सन्त कबीर जुलाहा थे । उनका विरोध उनके पदावलम्बियों में साफ़ झलकता है । इस काल में कबीर का काफी प्रभाव था । उस समय के दो सन्त उनसे बहुत प्रभावित थे । एक तो सिख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक देव और दूसरे उनके अनुयायी दादू दयाल साहब ।

तुलसीदास , सूरदास इसी भक्ति काल के थे। तुलसीदास की रामचरितमानस प्रसिद्ध है। यह एक अद्वितीय ग्रन्थ है । सूरदास ने कृष्ण प्रेम के गीत गाये हैं। पुरन्दरदास कर्नाटक में, बंगाल में जयदेव, सब इसी काल में हुए हैं । कृष्ण की परमभक्त मीराबाई को कौन नहीं जानता ? इस तरह जब-जब कठिन परिस्थितियाँ आयीं हैं देश के कोने-कोने से भक्तों के गीत गूँजे हैं । रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि रमन, अरविन्द व महात्मा गाँधी - सभी तो मानव को सत्य का मार्ग दिखाने और प्रेम का पाठ सिखाने के लिए इस संसार में आये थे ।

मनुष्य आज विषम परिस्थितियों से गुज़र रहा है। विज्ञान के बढ़ते कदम उसको सुख-सुविधा पहुंचाने के बजाय विनाश की ओर ले जा रहे हैं । तरह-तरह की बीमारियाँ, अज्ञान, गरीबी, बेरोज़गारी से मानव ग्रस्त है। मानव की अन्तश्चेतना एक अजीब तरह से पड़ते विज्ञान के नवीन प्रकाश में तड़प रही हैं उस पुरातन शान्ति की प्राप्ति के लिए जो मृतप्राय हो चली है।

वसुधैव कुटुम्बकम्

आज ज़रूरत है विश्व के सभी प्राणियों में प्रेम के प्रसार की। हम सब उस परम् पिता परमेश्वर की सन्तान हैं, हम सब एक परिवार हैं - इस भावना के विस्तार की ज़रूरत है। सनातन धर्म का यही एक मूलभूत आधार है।

भारत भूमि तो संतों की भूमि है। जब-जब धर्म हास की ओर झुका है तब-तब किसी न किसी साधु संत का या अवतार का पृथ्वी पर अवतरण हुआ है। अंग्रेज़ जब भारत में आये तो हिन्दू धर्म अवनति पथ पर था, जाति-भेद बहुत बढ़ गया था। जिस भारत से हज़ारों वर्ष पहले धर्म प्रचार के लिए लोग विदेश भेजे जाते थे उसी देश के लोग विदेश जाने पर जाति से च्युत किये जाने लगे। विधवायें जिन्दा जलाई जाने लगीं। सामाजिक स्थिति पराकाष्ठा पर पहुँचती ऐसे समय में राजा राम मोहन राय और अनेक मनीषियों का भारत में आगमन हुआ।

उस समय के परमसन्त स्वामी रामकृष्ण परमहंस का कथन और जीवन-चरित्र आज भी लोगों के लिए प्रेणास्रोत है। उनके ही शिष्य स्वामी विवेकानन्द को कौन नहीं जानता है ? अपने छोटे से जीवन में देश-विदेश भ्रमण करके उन्होंने विश्व में हिन्दू सनातन धर्म को एक नए रूप में स्थापित किया। वेदान्त के सिद्धान्तों को, जो हिन्दू धर्म का प्राण हैं, प्रतिपादित किया। धर्म में पनप रहे रूढ़िवाद की आलोचना करते हुए उन्होंने सामाजिक चेतना, दीन-दुखियों की सेवा, रोगी की सेवा, समाज में कोई भूखा न रह जाए - इन बातों पर अत्यधिक जोर दिया। उन्होंने ऋग्वेद का उदाहरण देते हुए हमेशा यही कहा कि विश्व की भलाई के साथ-साथ अपने स्वयं की भलाई के बारे में भी सोचना चाहिए। उनका कहना था कि एक भूखे व्यक्ति को कभी धर्म के विषय में नहीं समझाया जा सकता। उन्होंने भारतीय धर्म का देश-विदेश में प्रचार किया। अगर श्री रामकृष्ण भक्त थे तो विवेकानन्द कर्मयोगी थे। श्री महर्षि रमन ज्ञानयोगी थे। उम्र के सत्रहवें वर्ष से ही उन्हें बहुत सी आध्यात्मिक अनुभूतियाँ होने लगी थीं। आत्मज्ञान को समझ लेना ही उनकी शिक्षा का ध्येय था। उन कहना था कि पहले यह सोचो कि " मैं कौन हूँ ?" आत्मज्ञान की खोज ही आध्यात्म का हृदय है। विवेकानन्द की तरह कभी महर्षि रमन ने समाज सुधार की ओर ध्यान नहीं दिया।

श्री अरविन्द घोष और महात्मा गांधी को सभी जानते हैं। गांधीजी एक अद्वितीय नेता के रूप में विश्व में प्रसिद्ध हैं। उनके राजनैतिक प्रचार में हिन्दू धर्म की जड़ें बहुत गहराई तक

पैठी हुई थीं। सामाजिक सुधार का आधार भी वैदिक धर्म ही था । " **बुरा न देखो, बुरा न बोलो, बुरा न सुनो** " यह उनके तीन सिद्धान्त थे ।

" **अहिंसा परमो धर्मा** " यह उनका कथन था । उन्होंने देश की बिगड़ी हुई उस स्थिति में मानवता का सन्देश दिया जब कि समाज में कुछ वर्गों को बड़ी नीची नज़र से देखा जाता था । उनसे उन्हें बहुत स्नेह था, उनके उद्धार के लिए वह स्वयं उनकी कॉलोनी में जाते ओर सफाई आदि का कार्य करते । इस तरह प्रेम ओर सेवा से उनका उद्धार किया। उन्होंने इस वर्ग का नाम 'हरिजन' रखा - अर्थात् वे हरि के जन हैं । जिसमें स्वयं हरि हैं वह तो हमारे प्यारे हैं - यह उनका कहना था। उनका धर्म ही प्रेम ओर सेवा की नीव पर था जो वेद का मूलाधार है। इस तरह अथाह प्रेम के बल पर गाँधी जी अछूत वर्ग को हिन्दू समाज में विकसित विचारधारा के साथ लाने में सफल हुए ।

स्त्रियों की स्थिति उस समय समाज में ठीक न थी । उनको समाज में बराबरी का हक दिलाने ओर उनकी स्थिति में काफी सुधार करने में गाँधी जी का बहुत योगदान रहा है । हस्त शिल्प ओर छोटे उद्योग धन्धो को उन्होंने काफी बढ़ावा दिया । इसके साथ ही साथ उनका सबसे बड़ा कार्य था नित्य की ' प्रार्थना सभा ' जिसका आरम्भ ' रामधुन ' से होता था ।

तीस वर्ष के राजनैतिक जीवन में उन्होंने हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान तो किया साथ ही साथ हिन्दू समाज को भी एक नया जीवन दिया । इसीलिए राजनीतिज्ञ के साथ उनको वर्तमान हिन्दू धर्म के उत्प्रेरक के रूप में अधिक जाना जाता है क्योंकि हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान ओर समाज सुधार का उनका कार्य स्मरणीय है। उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप देश ही नहीं वरन धर्म पर भी है। अपने ही देश में नहीं बल्कि विदेश में भी उनके व्यक्तित्व ओर कृतित्व की अमिट छाप है।

00000000

बुद्ध धर्म

ईसा पूर्व की छठी सदी में धार्मिक क्रांति और सुधारवादी आन्दोलन के परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। इस धर्म के उदय और विकास से ब्राह्मणों को बहुत ही आघात पहुँचा, इसके उदय काल का समय करीब-करीब वही है जिस समय पेरिस में जरास्त्रु और चीन में कन्फूशियस का उदय हुआ था।

भारत में जिस समय बुद्ध का आगमन हुआ लोग ब्राह्मणों के कट्टरवाद से त्रस्त थे। उस समय अनेक महापुरुषों और मनीषियों के धार्मिक उपदेश के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक सुधार भी हुए। सामाजिक परिवर्तन निःसंदेह धर्म और दर्शन की नई खोज से सम्बन्ध रखता है। उसके विषय और प्रकार का निर्धारण नहीं करता। संस्कृति के आध्यात्मिक पक्ष के विकास में प्रतिभा बीज का कार्य और करती है। भगवान बुद्ध के उपदेश में उनकी विशेष आध्यात्मिक अनुभूति कितनी और किस रूप में व्यक्त हुई इसमें उस समय के समाज और चिंतन का आधार अवश्य था। बौद्ध धर्म का उदय यद्यपि भारत से हुआ, परन्तु मतावलम्बी उसके यहाँ कम हैं।

जिस समय बौद्ध धर्म का उदय हुआ उस समय लोग सामाजिक परिस्थितियों से त्रस्त थे, इसीलिए नैतिकता पर आधारित इस धर्म का लोगों ने खुले दिल से स्वागत किया। आज विश्व की पूरी जनसंख्या का पाँचवा हिस्सा बौद्ध धर्म का अनुयायी है। भारत में इसका प्रभाव अवश्य कम हो गया है परन्तु एशिया में इसका प्रभाव आज भी बराबर बना हुआ है। वैदिक काल के रीति-रिवाज़ का रूप जिसे ब्राह्मणों और पुजारियों ने अपने हित के लिए विकृत कर रखा था, इससे तरह-तरह की जाति, उपजाति भेद बन गए थे। फलस्वरूप लोगों में त्राहि-त्राहि मच गयी थी। जाति-पाति के बखेड़ों के कारण व्यक्ति का सामाजिक स्तर उसके गुणों, आचरण और चरित्र के आधार पर न होकर उसकी जाति के आधार पर होता था। व्यक्ति नैतिक दृष्टि से चाहे कितना भी गिरा क्यों न हो लेकिन अगर वह उच्च जाति का है तो समाज में सम्मानित समझा जाता था। उस समय का प्रचलित धर्म बहुदेववाद पर था, जो कि वेदों की उन पुस्तकों पर आधारित था जिसे ब्राह्मणों ने अपने मन के अनुकूल लिख दिया था। पुरोहितों के जाल में फंसकर वेद की पूजा-पद्धति जो बहुत साधारण और सर्वग्राह्य थी, दुरुह बन गयी थी। साधारण लोग इस धर्म के कट्टरपन से घबराने लगे थे। सर्व साधारण का जो धर्म था उस पर अपने निजत्व का अस्तित्व बनाये रखने के लिए ब्राह्मणों ने अपना अस्तित्व जमा लिया। पर्सि ब्राउन का कहना है कि तत्कालीन ब्राह्मणों की रूढ़िवादिता, कर्मकाण्ड व

अन्धविश्वास के कारण समाज धर्मविहीन हो गया था । जिज्ञासु की भावना, विचारों की स्वतंत्रता और बौद्धिक वाद-विवाद जिसे बौद्ध मत वालों ने प्रोत्साहित किया, कोई नवीन बात नहीं थी । उपनिषद् काल में इन सबका प्रचलन था। बौद्ध मत के वैराग्य, जप-तप, एकान्तवास, जीवन की शुचिता व आत्ममुक्ति के सिद्धांत वेदों में वर्णित हैं। गौतमबुद्ध के उपनिषदों से जो जीवन-दर्शन की ज्ञान निधि पायी उसे अपने मनन, चिंतन और निद्धियासन से सम्बन्धित करके, सर्वसाधारण जीवन की दुःखमयी प्रवृत्तियों का विरोध करने के लिए एक अभिनव पथ का प्रदर्शन किया ।

मानव समाज में अपने अभ्युत्थान के लिए जो लोग उत्सुक मिले, उन्हें बुद्ध ने दो भागों में विभाजित किया (१) वैयक्तिक शान्ति और मुक्ति चाहने वाले, (२) गृहस्थाश्रम में सदाचार पूर्ण और आदर्श जीवन व्यतीत करने वाले । इन दोनों वर्गों के लिए क्रमशः भिक्षुधर्म और गृहस्थधर्म का प्रतिपादन बुद्ध ने किया । भिक्षुधर्म अंतःशुद्धि प्रधान है और गृहस्थधर्म आचार प्रधान। प्रथम में योग और ज्ञान के द्वारा निर्वाण पाने की योजना है और दूसरे में समाज में सत्य, सदाचार और पवित्रता की प्रतिष्ठा करके शान्ति और सुख का साम्राज्य स्थापित करने का आदर्श है ।

आध्यात्मिक विज्ञान को मानवता की भलाई के लिए व्यापक बना देना चाहिए। जिस तरह बुद्ध ने अपने को मानवता की भलाई के लिए उत्सर्ग कर दिया, उसी तरह से यदि मनुष्य संत-सद्गुरु के बताये अभ्यास को नित्यनियम से कुछ देर करे और उनके बताए मार्ग पर विश्वास के साथ चले तो निश्चय ही उसका अन्तर दिव्यज्ञान से प्रकाशित हो उठेगा। आज संसार की वही स्थिति है जो बुद्ध के अवतार के समय थी। बुद्ध के उपदेश में कुछ भी नया नहीं था। उनके पहले भी ऋषियों ने यही कहा और उनके समकालीन भी इसी सिद्धांत पर बल देते रहे। जगत में प्रत्येक वस्तु नश्वर है और दुखों से भरी है तथा तत्वरहित है, इसीलिए हर वस्तु की तृष्णा का होना या उसके लिए लालायित होना ही मनुष्य के दुःख का मूल कारण है। यह बुद्ध के तीन मूलभूत आधार हैं। प्रत्येक वस्तु विनाश की ओर उन्मुख हो रही है। विकास ओर विनाश की लीला प्रतिपल प्रकृति में चल रही है आसक्ति और अज्ञानवश मनुष्य इस सत्य को समझ नहीं पा रहा और उन्हीं में उलझा रहता है । बुद्ध के अनुसार संसार ' भवचक्र ' है जो बराबर चलता रहता है। कोई भी संसार के प्रारम्भ और अंत को नहीं जानता। मानव विचारों के इतिहास में बुद्ध ने ही एक नवीन विचारधारा को जन्म दिया । अन्य धर्मों का सिद्धांत ' स्व ' आत्मा या अहम पर आधारित है । बुद्ध उनके अस्तित्व को नहीं मानते। उनका कहना है कि

आत्मा ' मैं ' या अहम यह भ्रम है जो अविज्ञ होने के कारण होता है। मनुष्य का अस्तित्व ' चित्त ' और भौतिक पदार्थों की मिलौनी है। वह पाँच तत्व यह हैं -(१) रूप (भौतिक पदार्थ matter) (२) वेदना (तरह-तरह के दुःख-सुख की अनुभूति) (३) सम जना (चिन्तन) (४) संस्कार (कर्म) (५) विजनन (चेतना)। ज्ञान प्राप्ति के बाद बुद्ध ने चार सत्य बताये (१) दुःख (२) समुदय (३) निरोध, (४) मग्गा ।

(१) **दुःख** - संसार में चारों ओर दुःख ही दुःख हैं। जन्म मरण, बृद्धावस्था, शोक, अप्रिय संयोग, वियोग, इच्छित वस्तु की अप्राप्ति, आदि दुःख हैं। संसार का कोई भी प्राणी इन दुखों से मुक्त नहीं है। समस्त मानव जीवन दुःख से भरा हुआ है।

(२) **समुदय** - सांसारिक कष्टों और दुखों के कारण भौतिक वस्तुओं का सुख भोगने की वासना या इच्छा या तृष्णा, कामतृष्णा (संसार के भोगों की तृष्णा), भवतृष्णा (जीने की तृष्णा) , बिभ्वतृष्णा (पुनर्जन्म प्राप्त करने की तृष्णा), आदि दुखों के कारण हैं। बुद्ध ने समझाया कि रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श तथा मानसिक तर्क-वितर्क और विचारों से मनुष्य संसार के प्रति आसक्त होता है। इनसे अहंकार, ममता, राग द्वेष, कलह, नाना प्रकार के स्वार्थ आदि उत्पन्न होते हैं और मनुष्य उनके बन्धन में फंस जाता है। इन तृष्णाओं का विनाश किस प्रकार करना चाहिए, यही मनुष्य के सन्मुख वास्तविक समस्या है।

(३)। **निरोध** - दुःख का कारण जान लेने पर उसका निरोध करना या हटाना सम्भव है। तृष्णायें, अविद्या, अज्ञान जो दुःख का कारण हैं उनका मूलोच्छेदन से दुःख निरोध सम्भव है। तृष्णाओं या वासनाओं के विनाश करने से सांसारिक दुखों और जन्म-मरण के बन्धनों से मनुष्य मुक्त हो जाता है।

(४) **मग्गा (मार्ग)** - बुद्ध का कहना था कि यौगिक क्रियाएं, तपस्या, शारीरिक यातनायें न तो तृष्णा का अंत ही कर सकती हैं और न पुनर्जन्म के कष्टों से मुक्ति दिला सकती हैं। बार-बार यज्ञ प्रार्थना और वेदमंत्र पाठ के उच्चारण से वासनाओं और तृष्णा से मुक्ति नहीं मिल सकती।

उन्होंने कहा कि - वासनाओं का विनाश और दुखों का निरोध ' अष्टांगिक मार्ग ' के अनुकरण से ही हो सकता है

बौद्ध धर्म का मूल सिद्धांत धर्म चक्र प्रवर्तन में ही निहित है जिसका सबसे पहला प्रचार उन्होंने सारनाथ में किया। बौद्ध धर्म का कहना है कि न अति संसार में लिप्त रहो और न अति जप-तप में लीन होकर शरीर को कष्ट दो। मध्य मार्ग अपना कर अपने कर्तव्य का पालन करो। इस मध्यमार्ग को अपनाने के लिए 'अष्टांगिक' मार्ग का पालन करना चाहिए।

१। **सम्यक दृष्टि या विश्वास** - भले बुरे की पहिचान कर लेना।

२। **सम्यक संकल्प** - जो संकल्प हिंसा, प्रतिहिंसा, कामना तथा राग आदि से मुक्त होता है वही सम्यक संकल्प है।

३। **सम्यक वचन** - सत्य वचन बोलना जिसमें मधुरता और विनम्रता के भाव हों। सत्यवचन बोलो।

४। **सम्यक कर्म** - सदा सत्कर्म करें। चोरी, व्यभिचार आदि कर्मों से दूर रहें।

५। **सम्यक आजीव** - जीविका का साधन शुद्ध और ईमानदारी का हो। निषिद्ध कार्यों का अनुकरण नहीं करना चाहिए।

६। **सम्यक व्यायाम** - विशुद्ध, विवेकपूर्ण और ज्ञानयुक्त प्रयत्न होना चाहिए। संयम और बुरी भावना का परित्याग करना चाहिए।

७। **सम्यक स्मृति** - मनुष्य को सदा याद रखना चाहिए कि काया, मन, चित्त, वेदना, संज्ञा सभी नाशवान हैं। शरीर के प्रत्येक संस्कार और चेष्टा के प्रति जागरूक रहना। दुःख-सुख दोनों की अनुभूतियों के प्रति सचेत रहना। चित्त के राग-द्वेष व अराग-द्वेष के प्रति सचेत रहना। धर्म में स्मृति अर्थात् शरीर, मन और वचन की प्रत्येक चेष्टा के प्रति सचेत रहना।

८। **सम्यक समाधि** - अर्थात् चित्त की एकाग्रता और ध्यानव्यवस्था सम्यक का अर्थ है 'सत्य'।

इस अष्टांगिक मार्ग के तीन भाग हैं। - कायिक, वाचिक और मानसिक। कायिक में हिंसा, चोरी और व्यभिचार हैं, वाचिक में मिथ्या भाषण और प्रलाप हैं, मानसिक में लोभ, प्रतिहिंसा और धारणा हैं।

बौद्ध धर्म में नैतिक जीवन में शील पर बड़ा बल दिया गया है। उन्होंने चरित्र की पवित्रता, सत्य, प्रेम एवं उदारता, माता-पिता का आज्ञापालन, गुरुजनों के प्रति श्रद्धा, मद्यनिषेध, दान तथा प्राणी मात्र के प्रति दया का आदेश दिया है। बुद्ध ने युक्तिपूर्वक समझाया कि मनुष्य का यह जीवन एवं परलोक का जीवन उसके कर्मों पर अवलम्बित है। आत्मा और परमात्मा के सिद्धांतों को न मानते हुए भी बुद्ध पुनर्जन्म में विश्वास करते थे। मृत्यु के पश्चात् कर्मफल कौन भोगता है ? इसका समाधान उन्होंने इस प्रकार किया था कि पुनर्जन्म आत्मा का नहीं अपितु अनित्य तृष्णा अहंकार का होता है। पुनर्जन्म का कार्य निरन्तर चलता रहता है। अन्य धर्मों में निर्वाण मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होता है किन्तु बौद्ध धर्म के अनुसार निर्वाण इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है। निर्वाण से अभिप्राय परम ज्ञान से है निर्वाण का अर्थ है जीवन के मोह का अंत, कष्टों का निराकरण और अनन्त शांति की प्राप्ति एवं पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्ति। सभी जातियों एवं वर्गों के मनुष्यों को अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करने, नैतिक आचरण और सतकर्म करने से प्राप्त होता है। **हमारे संत मत में भी यही कहा गया है कि मनुष्य अपने जीवन काल में ही निर्वाण प्राप्त कर सकता है। इसके लिए अपने को सांसारिक आसक्तियों से ऊपर कर परमात्मा के प्रेम में लय कर दें। इस तरह आत्मा पर किसी तरह की छाया नहीं पड़ेगी और वह शीशे के समान पारदर्शी हो जाएगी। यही संस्कार रहित आत्मा निर्वाण गति को प्राप्त करती है।**

उनकी शिक्षा के अनुसार दया और प्रेम की भावना सद्कर्मों से अधिक महत्वपूर्ण है। वह प्राणिमात्र को पीड़ा या आघात पहुँचाना बुरा मानते थे। परन्तु उनकी दृष्टि में अहिंसा कोई एकान्तिक धर्म नहीं है जिस तरह से जैन धर्म में अहिंसा को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया गया था उतना उन्होंने नहीं पहुँचाया। बुद्ध ने ईश्वर को श्रष्टिकर्ता के रूप में स्वीकार नहीं किया। श्रष्टि का सृजन और अंत और ईश्वर के विषय में वाद - विवाद में पड़ने की उन्होंने कोई आवश्यकता ही नहीं समझी। आत्मा के अस्तित्व में भी बुद्ध विश्वास नहीं करते थे। उनका कथन था कि व्यक्तित्व और शरीर कई संस्कारों का संघात या जोड़ है। लेकिन स्पष्ट रूप से उन्होंने न तो यह कहा कि आत्मा है और न यही कहा कि आत्मा नहीं है। उनका कहना था कि संसार के सभी पदार्थ क्षणिक हैं और वे सदा परिवर्तित होते रहते हैं। मनुष्य अपने अज्ञान वश प्रत्येक वस्तु को स्थायी समझ लेता है। बुद्ध के अनुसार मानव जीवन ही दुःख का कारण है। यह अनुभव सबको होता है और यह यथार्थ है। वे यथार्थवादी थे। उन्होंने जटिल और अर्थहीन धार्मिक विधिओं और अनुष्ठानों का विरोध किया। ब्राह्मणों के प्रभुत्व को उन्होंने नहीं

माना। उनके द्वारा प्रतिपादित पशु बलि, यज्ञ आदि को आपत्तिजनक बताया और घोर निंदा की। बुद्ध ने जाति बंधनों को भी स्वीकार नहीं किया, बौद्ध धर्म के द्वार सभी जातियों के लिए खोल दिए।

बौद्ध धर्म के साथ-साथ जैन धर्म का भी प्रादुर्भाव हुआ। दोनों का मुख्य उद्देश्य तत्कालीन ब्राह्मण धर्म में व्याप्त दोषों को दूर करना और सरल, सादा, पवित्र तथा व्यावहारिक धर्म का प्रचार करना था। दोनों का प्रादुर्भाव सुधारक सम्प्रदाय के रूप में हुआ था। बौद्ध धर्म व्यापक, विशाल विचारधारा चिंतन के कारण देश-विदेश में ग्राह्य हुआ। लोगों ने मुक्त हृदय से उसे अपनाया जबकि जैन धर्म एक सिमित समुदाय में ही सिमट कर रह गया।

000000000

सिक्ख धर्म

सिक्ख धर्म की स्थापना उस समय की विषम परिस्थितियों को देखते हुए गुरु नानक देव जी ने की थी। यद्यपि यह धर्म हिन्दू धर्म की एक शाखा है, पर इस पर नवीन कलेवर उसी समय चढ़ा। वे कबीरदास के समकालीन थे। भारत में सिक्ख धर्म की एक अलग पहिचान है। अन्य धर्मों की तरह, इस धर्म ने अपना प्रचार-प्रसार नहीं किया। यद्यपि इसकी मुख्य मातृभूमि पंजाब है तथापि इसके अनुयायी देश-विदेश में बसे हुए हैं। सभी धर्मों की आधारभूत शिक्षा इसका सिद्धान्त है। अन्य धर्मों की भाँति संतों की शिक्षा इसका आधार है।

इस धर्म को मानने वाले प्रायः सभी जाति के लोग हैं। इसका स्रोत एकेश्वरवाद है। इस पंथ के अनुयायी एक महान योद्धा के रूप में देश-विदेश में पहचाने जाते हैं। पाँच ककार (*) इनकी मुख्य पहचान है। सत्य, शुचिता, सेवा व भक्ति पर अधिक बल दिया गया है। मानव जगत में मानव को सत्य की प्राप्ति के लिए इन चार बातों को प्रयोग में लाना ही पड़ेगा।

मुगलों के बार-बार के आक्रमण से उस समय की जनता भयभीत और दिशा हीन हो गयी थी। लोगों को असामाजिक तत्वों से भयभीत देख उन्हें बहुत दुःख होता था। उनका धार्मिक उपदेश बहुत अनोखा था। असामाजिक तत्वों से युद्ध करने के लिए उन्होंने लोगों को प्रेरित किया। सिक्ख धर्म भारतीय दर्शन की भाँति धर्म के निर्गुण व सगुण दोनों पहलुओं पर आधारित है। परमात्मा को उन्होंने पारब्रह्म कहा है। सारे विश्व का रचयिता एक ' ओंकार ' है। गुरु नानकदेव का कहना है कि माया मानव की वह प्रवृत्ति है जो उसे गलत धारा की ओर प्रेरित करती है। माया के आधीन ही मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार जनित कार्यों में लिप्त रहता है। सिक्ख धर्म का मार्ग सहज मार्ग है, अर्थात् प्रकृति के किसी भी नियम को सहज ढंग से मानते हुए धर्मपथ पर चलना।

गुरु नानकदेव के बाद अनेक गुरु - गुरु अमरदास, रामदास, गुरु अर्जुन देव, गुरु तेगबहादुर आदि हुए। गुरु तेग बहादुर को अत्यधिक यातना देने के बाद चाँदनी चौक में मुगल बादशाह की आज्ञा से उनका सिर काट दिया गया था। उनके स्मारक के रूप में दिल्ली में वहीं पर शीश गंज गुरुद्वारे का निर्माण हुआ। जिस समय वह शहीद हुए उनके पुत्र गुरु गोविन्द सिंह मात्र नौ वर्ष के थे। इनका जन्म पटना में हुआ था। जिस समय गुरु तेग बहादुर शहीद हुए यह आनन्दपुर में था। उन एक शिष्य ने दाहसंस्कार किया। एक वयस्क भक्त की सलाह से गुरु गोविन्द सिंह जी ने आनन्दपुर से आकर पौन्टा में अपना केंद्र बनाया। उनकी बढ़ती हुई

ख्यति से वहाँ के दो मुखिया उनसे इर्ष्या करने लगे क्योंकि उनको भ्रम हो गया कि गुरु उनके विरुद्ध कुछ करेंगे। फतेहशाह और हरी चन्द दो व्यक्तियों ने बगुरु के पौन्टा साहब केन्द्र पर हमला कर दिया। इस युद्ध को जीतने के बाद गुरु आनन्दपुर आ गए। वैशाखी के दिन सिक्ख समुदाय वहाँ एकत्रित होकर हर्षोल्लास से पूजा करते हैं। यही गुरु ने पाँच प्यारे की स्थापना करके इतिहास को मोड़ दिया। उन्होंने घोषणा की उन्हें पाँच सिर की ज़रूरत है। कुछ हिचक के बाद पाँच व्यक्ति (***) सामने आये। यही पाँचों इनके प्यारे थे। तभी से खालसा नाम पड़ा जिसका अर्थ है 'शुद्ध'। सिंह उपनाम भी तभी से प्रारम्भ हुआ और खालसा की पहिचान पाँच ककार भी तभी से शुरू हुई। खालसा मत के यही पाँच नए सदस्य थे। इनके अनुयायियों ने बड़ी श्रद्धाभक्ति के साथ गुरु ग्रन्थ साहब का पालन किया।

अन्य भारतीय धर्मों के समान सिक्ख धर्म का भी मुख्य आधार यही है कि शरीरधारी गुरु जो सच्चा सन्त हो उसे गुरु बनाना चाहिए। शरीरधारी से तात्पर्य यह है कि वह हमारे ही समान हो, क्योंकि प्रकृति का यह नियम है कि केवल शरीर धारी गुरु (आत्मा) शरीर धारी जीवों का उद्धार कर सकता है। शरीर छोड़ने के पश्चात् वह अपने शिष्यों का ध्यान तो रखता है पर नए शिष्य नहीं बना सकता। ऐसा इसलिए नहीं होता कि गुरु सीमित हो गया है, बल्कि इसलिए कि शिष्य ही इतने सीमित हैं कि वे उस गुरु से शिक्षा प्राप्त कर सकें जो निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं। निर्वाण प्राप्त गुरु से वह लाभ प्राप्त कर सकता है जिसने गुरु के जीवनकाल में आत्मसाक्षात्कार कर लिया हो। परमपिता परमात्मा सभी कार्य बिना किसी की मदद के कर सकता है किन्तु फिर भी शरीरधारी गुरु रूपी परमात्मा की बहुत ज़रूरत है। क्योंकि मनुष्य को रूप धर के ही शिक्षा दी जा सकती है। हमारी परेशानियाँ, सीमा और दुखों का निवारण तभी हो सकता है जब कि परमपिता परमात्मा शरीर धारण करके आयेँ, हमारी व्यथा को देखें और समझें।

द्वितीय आधार यह है कि जीवन-मरण के बार-बार के चक्करों से छूटने के लिए सन्तों की शिक्षा पर चलना ज़रूरी है। तभी जीवन सुखी हो सकता है। प्रकृति का नियम ही ऐसा है कि जिस व्यक्ति ने अपने जीवनकाल में शरीरधारी सच्चे सन्त की संगत में बैठकर आत्म साक्षात्कार नहीं किया उसे तो मृत्यु लोक में बार-बार आना ही पड़ेगा। इसीलिए हमें शरीर रहते हुए ही आधात्म प्रगति कर लेनी चाहिए।

वह व्यक्ति सच्चा सन्त नहीं हो सकता जो अपने शिष्य को अंतर में न पहुँचा दे। प्रारम्भ हमेशा याद रखना चाहिए क्योंकि बिना सच्चे सद्गुरु द्वारा प्रारम्भ कराये कोई भी इस मार्ग

पर नहीं चल सकता। यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य है कि मनुष्य बिना सतगुरु के इधर उधर भटकता है ।

गुरु नानक देव और उनके बाद के गुरुओं ने आध्यात्मिकता का प्रचार बहुत ही साधारण और प्रभावशाली भाषा में किया। लाखों लोगों के हृदय में प्रेम और आध्यात्मिक भावनाओं को जाग्रत किया ही साथ ही साथ सदियों से चले आ रहे अत्याचार से मुक्त होने का मार्ग भी सिक्ख धर्म ने दिखाया।

जब दसवें गुरु गुरु गोविन्दसिंह जी ने शरीर छोड़ा तो अफवाह उड़ गयी कि अब कोई शरीर धारी गुरु नहीं आएगा। तभी से 'ग्रन्थ साहब' सिक्ख धर्म के मानने वालों द्वारा पूजा जाने लगा। ठीक उसी तरह जिस तरह से ईसाई धर्म मानने वालों ने अपने को 'बाइबल' से बाँध लिया। उस दिन से आज तक यही सिद्धान्त उनका प्रतिबंध बन गया है। शरीरधारी गुरु के बाद किसी भी धर्म का वही हाल होता है जैसे दिन के बाद रात। इतिहास साक्षी है कि सभी धर्मों के साथ ऐसा ही हुआ है ।

(*) सिक्ख धर्म के पाँच ककार - पाँच ककार का अर्थ 'क' शब्द से नाम प्रारम्भ होने वाली उन ५ चीज़ों से है जिन्हें सिक्खों के दसवें गुरु, गुरु गोविन्द सिंह जी द्वारा रखे सिद्धांतों के अनुसार सभी खालसा सिक्खों द्वारा धारण किये जाते हैं। ये हैं - केश, कड़ा, कृपाण, कंघा और कच्छा

(**) पंज प्यारे अथवा पाँच प्यारे - सिक्ख गुरु गुरु गोविन्दसिंह जी द्वारा १३ अप्रैल १६९९ को आनन्दपुर साहिब के ऐतिहासिक दिवा में पाँच लोगों - भाई साहिब सिंह, भाई धरम सिंह, भाई हिम्मत सिंह, भाई मोहकम सिंह और भाई दया सिंह, को दिया गया नाम ।

ईसाई धर्म

ईसाई धर्म के प्रवर्तक जीसस क्राइस्ट का जन्म बेथलहेम में हुआ था। इस धर्म को मानने वाले प्रायः विश्व के सभी स्थानों पर पाए जाते हैं। हर संस्कृति और जाती के लोगों में इनका विस्तार है। दक्षिण पूर्वी भारत में भी इनके काफी मतावलम्बी हैं। इन लोगों में एक खास बात है कि रविवार को ये लोग गिरजाघर में एकत्र होकर ईसा के उपदेश व उनके कार्यों को अवश्य याद करते हैं, जो उन्होंने मानवता के उपकार के लिए दिए थे। इस स्मृति के साथ-साथ वे यह भी ख्याल करते हैं कि ईसा सशरीर उनके ही बीच नहीं पूरे संसार में उपस्थित हैं। प्रभु की सत्ता के आभास की यह कैसी अनोखी प्रथा है एक जगह एकत्र होने की। उनके जीवन का मुख्य ध्येय है कि वे प्रतिपल अनुभव करें कि ईसा उनके बीच सशरीर उपस्थित हैं।

ईसा का मुख्य आदेश यह था कि जो तुम्हारे साथ बुराई करे तुम उसको भी क्षमा कर दो। उन्हें जब सूली पर चढ़ाया गया तो उन्होंने यही कहा - " हे भगवान् ! इनको क्षमा कर दो क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं। हे मेरे पिता, मैं अपने को आपके हाथों अर्पित करता हूँ।"

वैदिक धर्म के अनुसार ही ईसा ने भी प्रेम पर बहुत ज़ोर दिया है। उनका कहना है कि अपने प्रभु को अपनी सारी आत्मा, सारी बुद्धि से प्यार करो। " क्षमा" - ईश्वर का प्यार पाने के लिए क्षमा को अपनाना होगा। 'परोपकार' - कंगालों, लंगड़े, लूले, अन्धे और दीन हीन दुःखी व्यक्तियों की बेग़र्ज मदद करो। 'सेवाभाव' - दूसरे से अपने प्रति जैसा व्यवहार चाहते हो उनके प्रति वैसा ही व्यवहार करो।

स्वर्ग में विराजमान हमारे पिता

तेरा नाम पवित्र माना जाए !

तेरा राज्य आये !

तेरी इच्छा जैसी स्वर्ग में वैसे पृथ्वी पर भी पूरी हो !

आज हमारा प्रतिदिन का आहार हमें दो !

हमारे अपराध क्षमा करो,

जैसे हमने भी अपने अपराधियों को क्षमा किया !

और हमें परीक्षा में न डाल !

बल्कि बुराइयों से हमें बचा !

आशीर्वचन और धिक्कार - जो अपने को दीन-हीन समझते हैं, जो नम्र हैं, दुःखी हैं, दयालु हैं, जिनका हृदय निर्मल है, जो धार्मिकता के कारण अत्याचार सहते हैं उनको ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त है। लेकिन जो लोग झूठ बोलते हैं, दया नहीं करते हैं, धनी हैं पर भूखों को खाना नहीं खिलाते, उनको धिक्कार है।

पाप से डरो - उनसे मत डरो जो शरीर को मार डालते हैं। उनसे डरो जो शरीर और आत्मा का सर्वनाश कर बैठते हैं।

ईमानदारी - जो छोटी-छोटी बातों में ईमानदार है वह बड़ी बातों में भी ईमानदार है।

आध्यात्मिक जागरण - जागते रहो और प्रार्थना करते रहो ताकि तुम परीक्षा में न पड़ो।

विनम्रता - विनम्रता को जीवन में इस तरह अपनाओ कि आपस में छोटे-बड़े का भेद-भाव न रहे। किसी के प्रति घृणा न रहे।

आत्म त्याग - ईसा का कहना था कि जो मेरा अनुसरण करना चाहता है वह आत्मत्याग करे और प्रति दिन अपना सलीब उठाकर मेरे पीछे हो ले, क्योंकि जो अपना जीवन सुरक्षित रखना चाहता है वह उसे खो देगा। जो मेरे कारण अपना जीवन खो देता है वह उसे सुरक्षित रखेगा। मनुष्य को इससे क्या लाभ मिलेगा यदि वह सारा संसार तो प्राप्त कर ले और अपना जीवन ही गवाँ दे। अपना सर्वनाश कर ले। (लूकस ९, २३, २५)

निति वचन - तुम्हारी आँख तुम्हारे शरीर का दीपक है। यदि तुम्हारी आँख अच्छी है तो तुम्हारा सारा शरीर भी प्रकाशमान है। यदि वह बीमार है, तो तुम्हारा सारा शरीर भी बीमार है, अन्धकारमय है। इसलिए सावधान रहो जो ज्योति तुममें है वह अन्धकारमय न हो। (लूकस १८, ३४, ३५)

शुद्ध और अशुद्ध - सब लोग मेरी बात सुनो और उसे समझो। ऐसा कुछ नहीं जो बाहर से मनुष्य में प्रवेश कर उसे अशुद्ध करे , बल्कि जो मनुष्य के मुँह से निकलता है वही उसे अशुद्ध करता है। (मारकुस ७, १५, १६)

अपने विषय में - संसार की ज्योति में हूँ मेरा जो अनुसरण करता है वह अंधकार में नहीं भटकेगा। उसे जीवन की ज्योति प्राप्त होती है। पुनरुत्थान और जीवन में हूँ जो मुझ में विश्वास करता है वह मरने पर भी जीवित रहता है और जो मुझमें विश्वास करते हुए जीता है वह कभी नहीं मरेगा। (योहन १३, २५, ७)

शिष्यों के प्रति - यदि संसार तुम लोगों से बैर करे तो याद रखो तुमसे पहले उसने मुझसे बैर किया। यदि तुम संसार के होते तो संसार तुम्हें अपना समझ कर प्यार करता। परन्तु तुम संसार के नहीं हो। मैंने तुम्हें संसार में से चुना है। इसलिए संसार तुमसे बैर करता है। मैंने तुमसे जो बात कही उसे याद रखो। सेवक स्वामी से बड़ा नहीं होता। यदि उन्होंने मेरी शिक्षा का पालन किया तो तुम्हारी शिक्षा का पालन करेंगे। यह सब मेरे नाम के कारण तुम लोगों के साथ करोगे क्योंकि जिसने तुम्हें भेजा है उसे वे नहीं जानते। " (योहन १५, १६, २१)

एक बार कुछ शास्त्रियों ने किसी दिन ईसा से पूछा - " तुम्हारे गुरु नाकेदारों और पापियों के साथ भोजन क्यों करते हैं।" ईसा ने यह सुनकर कहा - " निरोगों को नहीं, रोगियों को वैद्य की ज़रूरत होती है। जाकर सीख लो कि इसका क्या अर्थ होता है। मैं बलिदान नहीं बल्कि दया चाहता हूँ। मैं धर्मियों को नहीं पापियों को बुलाने आया हूँ।" (मत्ती ८, १२, १३)

ईसा को फाँसी की सज़ा केवल इसलिए हुई कि वह संसार से पाप को मिटा देना चाहते थे। लोगों को जाग्रत करने के लिए पहले से प्रचलित जो धर्म था उसी में उन्होंने अपना एक नवीन मत जोड़ा। लेकिन पुराने धर्माधिकारियों ने उनके नवी मत को पाप की संज्ञा देकर उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया।

0000000000

इस्लाम

इस्लाम के अर्थ हैं जिसमें 'सलामत रखी' हो, सन्तुलन हो, ऐतकाद हो, मुस्सलीम और मुकम्मिल हो अर्थात् पूर्ण विश्वास हो। पूर्ण विश्वास (जिसे मुसलमानों में ऐतकादात और ईमान कहते हैं) की सूक्ष्म व्याख्या यह है कि कुछ बातें ईमान मुजम्मिल (में ईमान लाता हूँ उसके नामों पर, उसकी हिदायत पर, अहकामात पर) के अन्तर्गत अनिवार्य रखी गयीं हैं जिनको व्यवहार में लाते रहने से बीच के रास्ते में सन्तुलन की व्यवस्था होकर लोक और परलोक की मन्ज़िलें तय करके शीघ्रताशीघ्र मनुष्य मन्ज़िले-मकसूद (धुरधाम) को प्राप्त कर लेता है।

इस्लाम का अर्थ है शान्ति (peace) प्रवर्तक, लोग इसे ईश्वर के कानून की व्याख्या (विवरण) के नाम से पुकारते हैं। अन्य धर्मों की भाँति इस्लाम का प्रादुर्भाव एक लम्बे अर्से के बाद उस समय की सामाजिक कुरीतियों को बदलने के लिए हुआ। अरब देश एक लम्बे अर्से से सेमेटिक जातियों का एक जलाशय सा रहा है, जिसका पालन-पोषण रेगिस्तान में हुआ, वे लोग खानावदोश और आपस में लड़ने वाले लोग थे। शरीर से हृष्ट-पुष्ट होते हुए भी दिमागी तौर पर जंगली हिंसक थे। मूर्तियों की पूजा करते थे, मक्का उस समय भी तीर्थस्थान था। कावा की उस समय भी स्तुति होती थी। तीर्थ यात्रियों के चढ़ावे से मक्का का प्रबन्ध होता था। जिस धर्म पर उस समय के यात्रियों का विश्वास था वह ईसाई और यहूदी धर्म के सिद्धांतों पर आधारित था जिनके भक्त मक्का और मदीना में रहते थे। इन्हीं सब धर्मों के मध्यांतर मोहम्मद का अवतार हुआ। वह एक गरीब गड़ेरिया के पुत्र थे। बचपन से ही बहुत कुशाग्र बुद्धि और धार्मिक स्वभाव के थे। एक अमीर विधवा से, जिसका नाम खदीजा था, विवाह किया जिससे उनको समाज में आशातीत सम्मान मिला।

मूर्ति पूजक लोगों के बीच में रहकर बहुत ही धैर्य व साहस के साथ वे इस प्रकार की पूजा का विरोध करने लगे। उनकी पहली घोषणा यह थी कि ईश्वर, अल्लाह, दयावान सब एक ही शक्ति के नाम हैं। उस समय वहाँ की सामाजिक स्थिति को देखते हुए इसी प्रकार के उद्घोष की ज़रूरत थी। उनकी इस तरह की घोषणा के कारण उस समय के कट्टर बहुदेव मूर्तिपूजक लोगों ने उनका विरोध करना शुरू कर दिया क्योंकि मूर्ति के चढ़ावे से उन लोगों का जीवन यापन होता था। विरोध इस सीमा तक बढ़ गया कि मोहम्मद को उनके निवास स्थान मक्का को छोड़ना पड़ा। वह अपने मित्र और अनुयायी अबुवक्र के साथ मदीना भाग कर आये जहाँ उनका बहुत स्वागत हुआ। इस घटना को हिज़रत या हिज़ीरा कहते हैं। मदीना में इनके नए विचार को लोगों ने बहुत बड़ी संख्या में स्वीकारा। पुनः अपने अनुयायियों की बड़ी संख्या के

साथ वह मक्का गए और सेमेटिक जातियों और सेमेटिक लोगों को अपने विचारों को समझाने में सफल हुए। उनकी समझ में आगया कि अवतार पुरुष जिस ईश्वर के विषय में बात कर रहा है वही सही है। उस समय अरेबिया में फैली हुई गलत वैचारिक धारणाओं को दूर करने के लिए वे एक डाक्टर के समान आये और उस बीमारी को दूर करने में सफल भी हुए। धीरे-धीरे अज्ञान दूर हो गया और लोगों में एकता बढ़ने लगी। अभी उनका कार्य पूरा भी नहीं हुआ था कि अचानक उनकी मृत्यु हो गयी। उनके इस कार्य को उनके शिष्य अबुबक्र ने सम्भाला।

चेतना की इस लहर से सभी धीरे-धीरे प्रभावित होते जा रहे थे। सिंधु घाटी, मिस्र, सीरिया, पर्शिया अदि जगहों में इसका विस्तार भी खूब हो गया था। ईश्वर एक है इससे सभी सहमत थे। उस समय यूरोप में भी धार्मिक उदासीनता छायी हुई थी, धर्म की इस लहर से वे लोग भी सरोवर हुए बिना न रहे। क्रूर काल, क्रूर समाज, और क्रूर लोगों के बीच इस्लाम धर्म का उदय हुआ। इसका प्रभाव विश्व के बीस प्रतिशत लोगों पर है। इस धर्म का दर्शन भी अन्य सभी धर्मों की भाँति सरल और समझ में आने वाला है। उनका कहना है कि ईश्वर (अल्लाह) एक है। मोहम्मद उनके पैगम्बर हैं। इसलिए विश्व में जितने भी श्रद्धालु लोग हैं उन्हें दो प्रकार का आशीर्वाद मिलता है - इस जन्म में धन व सम्मान एवं पुनर्जन्म में स्वर्गीय सुख। यह सब अल्लाह की ओर से होता है। कुरान इनका धार्मिक ग्रन्थ है। अनुभूतियों और सन्देश का संग्रह कुरान है जो अल्लाह की ओर से इनको मिला है। यह अरबी भाषा में लिखी गयी है। परमात्मा तक पहुँचने का जरिया किसी धर्म के धर्माधिकारी नहीं बता सकते, इस विषय पर प्रायः वे सभी लोग मौन ही रहते हैं। सभी धर्म देखा जाये तो एक ही स्तर पर खड़े हैं। इस जिज्ञासा की तुष्टि केवल शरीरधारी गुरु, वह भी जिन्होंने 'नाद' शब्द के द्वारा इस रहस्य को भेद लिया है, कर सकते हैं। ऐसा ही उपनिषदों का भी कहना है।

मुसलमानों में बहुत उच्च कोटि के सन्त हुए हैं जो किसी खास देश, जाति, समाज के नहीं थे। वे कुरान या किसी अन्य धार्मिक ग्रन्थ पर ही निर्भर नहीं रहे। यह ज्ञान उन्हें ईश्वर की देन थी जिसे उन्होंने मानवता की भलाई के लिए फैलाया। हाफ़िज़ शम्सतवरेज, मौलाना रूम और कबीर साहब को 'नाद' (सुरत शब्द योग) का ज्ञान था जिसे उन्होंने मानवता की भलाई के लिए खुले हाथों लुटाया।

इस धर्म के चार मुख्य नियम दो भागों में बाटे जाते हैं।

१. **इबादत** - ईश्वर के प्रति दायित्व

२. **मोआमलत** - जन समाज के प्रति दायित्व

१. **सलात** - प्रार्थना व नमाज़ अदा करना मुख्य है। नमाज़ पाँच वक्त होनी चाहिए। प्रातः , दोपहर, दोपहर के बाद, व सूर्यास्त के पश्चात् ओर पाँचवा रात्रि के प्रथम पहर में। दोपहर की नमाज़ जुमा के दिन मस्जिद में होनी चाहिए । ईद के दिन सामूहिक नमाज़ मस्जिद में अदा करनी चाहिए ।

२. **रोज़ा** - पूरे दिन व्रत रखना।

३. **ज़कात** - साल भर की कमाई का कुछ अंश दान देना। यह बचत कमाई का ढाई प्रतिशत होना चाहिए ।

४. **मक्का** - तीर्थ यात्रा पर जीवन में एक बार अवश्य जाना चाहिए ।

इस तरह हम देखते हैं कि जितने भी धर्म हुए हैं सभी एक दूसरे से जुड़े हुए हैं । सभी का उद्देश्य अपने अंतःकरण की शुद्धि और मानवता के लिए कुछ करना, अर्थात् हर मानव में अल्लाह के दर्शन करना है ।

00000000

सभी धर्मों का मूल सिद्धान्त

सभी धर्मों के मूल सिद्धान्त का जब हम अवलोकन करते हैं तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धर्म के सार तत्व को समझने के लिए गुरु की आवश्यकता पड़ती है। कोई भी सच्चा सन्त सद्गुरु कभी किसी भी धर्म की आलोचना नहीं करता और न धर्म के विरुद्ध आचरण करने को कहता है। वह तो हमें उसके तह में जाकर, उसके गुणों को ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित करता है। सभी धर्मों के अवलोकन के पश्चात् एक ही निष्कर्ष निकलता है कि हर धर्म का मूल सिद्धान्त तो एक ही है - मानवता में प्रेम का प्रसार और हर व्यक्ति में परमपिता परमेश्वर के दर्शन करना। आज विश्व में भ्रातृ भाव बढ़ाने के लिए जगह-जगह धर्म सभायें हो रही हैं। इस तरह की सभाओं का परिणाम सुखद तो तब हो जब हम सभी एक स्वर से कहें और उसको ग्रहण करें कि सभी धर्म एक समान हैं, उनमें कोई भेद-भाव नहीं है। सबका उद्देश्य केवल ईश्वर-प्राप्ति है। ईश्वर प्राप्ति हेतु मानव - मात्र की सेवा करना। सत्य बोलो, सत्य देखो, सत्य सुनो, सबसे प्रेम करो। यदि ऐसी भावना प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर हो जाए, तो विश्व में जो हाहाकार मचा है, लोग एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो उठे हैं, यह सब मिट जाये और आपस में प्रेम का प्रसार हो जाये। वर्तमान समय में सभी लोग भाई-चारा और आपस में प्रेम की बातें बहुत जोर शोर से कर रहे हैं, किन्तु यह सब मौखिक है।

बड़े-बड़े धर्म सम्मेलन हो रहे हैं, लोग तरह-तरह के प्रभावशाली भाषण दे रहे हैं जो केवल उपदेश तक ही सिमित रह जाते हैं। उनकी कभी भी लोगों ने प्रयोगात्मक रूप से अपनाने की चेष्टा नहीं की। झूठ, असत्य, हिंसा और घृणा की भावना आज दिनोदिन बढ़ती ही जा रही है। इसका कारण क्या है ? इसका कारण एक ही है कि अधिकतर सन्त उपदेश तो देते हैं परन्तु स्वयं अपने व्यक्तिगत जीवन में यम-नियम का पालन नहीं करते। अधिकतर तो वैभशाली सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिए ही सन्त बन बैठे हैं। आवश्यकता है धुरधाम पर पहुँचे हुए शरीरधारी सन्त सद्गुरु की जिनका चुम्बकीय आकर्षण मनुष्य को इस तरह अपने में बाँध ले कि व्यक्ति उस प्रेम की परधि के बाहर न निकल सके और नित्य सत्य, अहिंसा व प्रेम की गंगा में स्नान करता रहे। सच्चे सतगुरु के अभाव में सभी धर्म गरीब हैं। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ा अभाव है सुरत शब्द योग (AudibleLife Stream) का। इसके जिज्ञासु और बताने वाले गुरु दोनों का ही प्रायः अभाव हो गया है। बिना 'सूरत शब्द योग' के आध्यात्मिक जाग्रति असम्भव है। आध्यात्मिक मार्ग की यह वह शक्ति है जिसकी चेतना के अभाव में मानव

जीवन अपूर्ण है। भले ही विश्व के सभी धर्म व मठ मिल कर एक हो जाएँ, परन्तु ये दो अभाव ऐसे हैं जिनके बिना वास्तविक आध्यात्मिक प्रगति हो ही नहीं सकती। बिना आध्यात्मिक भावना के उदय हुए व्यक्ति सत्य, अहिंसा व प्रेमानन्द की रसानुभूति का पान करेगा, ऐसा सम्भव नहीं है। यही तो उसको घृणा, द्वेष, हिंसा और आपसी बैर भाव से अलग करने में सफल होगी। धार्मिक सम्मेलन व मठों के एकीकरण से सामाजिक उत्थान भले ही हो जाये, प्रेम का प्रसार तो नहीं हो सकता ।

सभी धर्मों का अगर ऐतिहासिक अवलोकन किया जाए तो देखने में यही आता है कि सबमें कमोवेश अन्धविश्वास, पूर्वानुमान, भावात्मक अतिरंजिता, अनुष्ठानिक धर्मक्रिया, तात्विक चिन्तन व नीति परक सिद्धांत का ही समावेश है। कमोवेश वह इन्हीं तत्वों पर अवलम्बित हैं। धर्म, भक्ति और जो भी शुभ कार्य होते हैं वह सब इन्हीं के अन्तर्गत होते हैं। इनमें से किसी में थोड़ा बहुत सुरत शब्द योग पर भी प्रकाश डालते हैं, बाकी तो प्रायः इसको भूल ही गए हैं।

प्रश्न यह उठता है कि सच्चा धर्म कौन सा है ? धर्म एक व्यक्तिगत अनुभव है जिसका आधार अनुभूति है। कोई भी व्यक्ति नहीं बता सकता कि सौन्दर्य क्या है, व्यक्तिगत बुद्धि और वस्तु के बीच का यह सम्बन्ध है जो अनुभव से होता है। सौन्दर्य वह आनन्द है जो उस सम्बन्ध से प्रस्फुटित होता है जसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। सौन्दर्य वह प्रेम है जो हृदय की असीम प्रकाश किरण है। धर्म भी उसी प्रकार प्रकाश किरण है , प्रेम है, और है असीम आनन्द। सच्चे सम्बन्ध का अस्तित्व तभी है जब आत्मा असीम में आनंदमयी हो उठती है। सम्बन्ध रीति-रिवाजों व पंथ में नहीं मिलते। इसीलिए कहना पड़ता है कि धर्म व्यक्तिगत अनुभव है और हर व्यक्ति के अनुभव अलग-अलग होते हैं। इस तरह सबके धर्म भी

अलग-अलग होते हैं। धर्म वाह्य अभिव्यक्ति नहीं है, इसको कह कर नहीं बताया जा सकता। वह पूर्णरूपेण आन्तरिक अनुभव है। इसीलिए इसे जाति-पाँति, देश-काल व व्यक्ति विशेष में बाँधा नहीं जा सकता। इसे एक व्यक्ति से दूसरे को समर्पित नहीं किया जा सकता और न पुस्तकों में ही लिखा जा सकता है। धर्म मानव जीवन का अभिन्न अंग है। पुरातन काल में जिस तरह से मनुष्य में अपने स्वजनों, पड़ोसियों के सुख-दुःख में सह-भागी बनाने की भावना थी, वैसी भावना आज भी है। मन का अत्याचार आज भी उसे पीड़ित करता है। मनुष्य स्वयं अपने द्वारा पैदा की हुई चुनौतियों या परेशानियों से छुटकारा पाने के लिए दैवी सहायता की याचना की वाध्यता अनुभव करता है। मनुष्य की इस व्याकुलता का कल्प प्रेम जो उसे परमात्मा की ओर उन्मुख करता है। वाह्य आकर्षण व उपकरण व जीव जन्तु व पुस्तक आदि

से प्रेम करके वह खुशी पाता है, परन्तु इससे उसे संतुष्टि नहीं होती, उसका अन्तर्मन तो व्याकुल रहता है उस विराट शक्ति की आनन्दानुभूति के लिए जो प्रतिपल प्रकृति में दृश्यमान हो रहा है। इन सबसे जो अनुभूति होती है वही उसका धर्म है। इसीलिए समयानुसार धर्म में भेद-विभेद होते चले गए जो पुरातनकाल में मनुष्य का धर्म था आज के मनुष्य के धर्म से एकदम भिन्न है।

सदियों बाद भी यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि कौन सा धर्म सच्चा व यथार्थ है। अनुभव का अनुपात तो व्यक्ति का अपना होता है जो उसके लिए यथार्थ होता है। बिना यथार्थ वस्तु की अनुभूति के यदि हम एक लम्बी अवधि तक विचार-विमर्श, कल्पना तथा आत्म सुझाव के आधार पर नीव डालें भी तो यह वैसा ही होगा जैसे रेत में घर बनाना। यह कभी भी कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता। यथार्थ द्वारा पोषित धर्म ही विकसित होता है।

इस तर्क वितर्क को देखते हुए प्रश्न उठता है कि आखिर वह कौन सा धर्म है जो हर कसौटी पर सही उतरता है। गुरु और शिष्य जिसे दोनों एक समान अनुभव करते हैं वही धर्म है जिसका सारांश प्रेम है। इसके अभाव में वास्तविकता भी विलीन हो जाती है। अन्य सभी दृष्टिगोचर होने वाली वस्तुयें मायावी हैं। इस भेद से साक्षात्कार 'धुर' तक पहुँचे हुए गुरु ही करा सकते हैं। वह प्रेम के अथाह समुन्द्र होते हैं। उनको सत्य धर्म का पूर्ण अनुभव होता है जिस आधार पर वह लोगों को समझाते हैं। एकाग्रचित्त विचार करने पर हम भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रेम के सिवा और कोई धर्म नहीं है।

प्रीति नीति परमारथ स्वारथ !

कोई न राम सम जान यथारत !!

श्रद्धा प्रेम का दूसरा नाम है और प्रेम गुरु की यादगार बनाये रखने को कहते हैं। क्योंकि वह अपनी शक्ति, असीम, अनन्त, निःस्वार्थ प्रेम के सहारे व्यक्ति को अन्धकार रूपी अज्ञान से निकालकर उसके हृदय में श्रद्धा प्रेम का बीजारोपण कर अनन्त ज्ञान का प्रकाश भर देते हैं। प्रेम के इस बीजारोपण से अन्तर में प्रस्फुटित पुष्प की सुगंध में मदमस्त हो हम एकदम कहने लगते हैं - यही सच्चा धर्म है। सच्चा धर्म असीम और बन्धन रहित होता है। प्रेम की अनौखी अमृत बूँद पीकर जीवन शाश्वत हो जाता है। अतः असली धर्म व्यक्ति के अनुभव की चीज़ है जिसे वह तभी अनुभव करता है जब वह प्रेम की स्वाति बूँद चख लेता है। संस्थाएं बनती हैं, मिट जाती हैं , परन्तु नीति व्यवहारकुशलता सदा जीवित रहती है जो चिरजीवी है।

इस तरह स्पष्ट है कि असली धर्म रीति रिवाज़ों के बन्धन से परे की वस्तु है जिसका अनुभव आत्मा के सूक्ष्मेतर स्थान पर ही किया जा सकता है जब रहस्यमय मिलन परमात्मा से हो जाता है। उसकी वाणी सुनाई पड़ने लगती है। व्यक्ति को अनुभव होने लगता है कि विश्व में प्रेम के सिवा कुछ नहीं है। बेसुध हो जाता है वह प्रिय के प्रेम में

" बेखुदी छा जाये ऐसी, दिल से मिट जाये खुदी !

उनसे मिलने का तरीका, अपने खो जाने में है !"

इस तरह हम देखते हैं कि प्रेम ही वह शाश्वत धर्म है जो चहुँ दिशि चमक रहा है, किन्तु हमारी आँखें उसे देख नहीं पा रही हैं, देखती हैं उस मायावी प्रकाश को और उसी में खोई हुई हैं। उस शाश्वत धर्म को जो प्रेम से चारों ओर प्रकाशित हो रहा है तभी देख पायेंगे जब गुरुदेव अपनी असीम शक्ति से शिष्य में असीम ज्योति जगा देंगे। ऐसा तभी होगा जब शिष्य भी अपनी सत्ता को गुरु में लय करके सत्ता रहित हो जायेगा।

कृष्णा भगवान कहते हैं - "न वहाँ सूरज प्रकाश करता है, न चन्द्रमा, न आग, लेकिन फिर भी वहाँ प्रकाश है, जहाँ पहुँचने पर मनुष्य दुनियाँ में लौट कर नहीं आता - वह मेरा परम धाम है । "

" तू तू करता तू भया , मुझमें रही न हूँ "

अर्थात् गुरु से प्रेम उस पराकाष्ठा पर पहुँच जाए कि गुरु और शिष्य दोनों का भेद ही न रह जाये। यही हिन्दू धर्म अर्थात् वेदों का उपदेश है और यही धर्म है।

0000000

सच्चा गुरु व शिष्य

(पहचान)

एक दार्शनिक और मानव शास्त्र के ज्ञाता की अपेक्षाकृत सच्चे सतगुरु कहीं अधिक उच्च श्रेणी के होते हैं। जो वेदों के रहस्य को समझते हैं 'अवृजिन ' (दोषरहित) हैं, निष्पाप हैं, काम से निर्लिप्त हैं, जो शिक्षा देकर किसी प्रकार की अर्थ प्राप्ति की आशा नहीं रखते, वही सच्चे सन्त हैं। जिस प्रकार सूर्य प्रकाश व ऊर्जा देता है, चन्द्रमा शीतलता प्रदान करता है ,परन्तु बदले में कुछ नहीं लेता, क्योंकि भलाई करना उसका स्वाभाविक धर्म है, उसी प्रकार सतगुरु भी बिना किसी प्रतिदान के लोगों को सुख-शान्ति प्राप्त करने की युक्ति बताता है। ऐसे ही मनुष्य सच्चे गुरु हैं। सच्चा सतगुरु वह है जिसने अपनी आत्मा को मन के बन्धन से मुक्त कर लिया है और परमात्मा में लय हो गया है। उनके पास बैठने से हृदय में प्रेम तरंगें उठने लगती हैं। एक अलौकिक आनन्द छा जाता है, उनके पास से हटने का मन नहीं करता। उनके आस-पास का वातावरण ईश्वर प्रेम से समाविष्ट रहता है। ऐसी जगह जाकर देखना चाहिए कि बिना कुछ बताये उनके पास बैठने से मानसिक द्वन्द शांत होता है या नहीं, हृदय उनकी ओर आकर्षित होकर प्रेम रस से सरोबोर हो जाता है या नहीं ।

यह भी देखना चाहिए कि उसने गुरुआई को अपनी जीविका का साधन तो नहीं बना लिया है। जो सच्चा गुरु है वह अपनी जीविका के लिए स्वयं उपार्जन करेगा। कुछ न कुछ कार्य करके वह अपना जीवनयापन करेगा लेकिन दान लेकर नहीं खायेगा। यदि वह दान लेकर खायेगा तो उसकी आध्यात्मिक कमाई समाप्त हो जाएगी। दिन रात आत्मानन्द में लीन वह सांसारिक भोगों से उदासीन रहता है। उसके जो भी सांसारिक कर्म होते हैं वह केवल कर्तव्य मात्र के लिए होते हैं। ऐसे लोगों के पास जाने से धीरे-धीरे आत्मा के आनन्द का अनुभव होने लगता है। वह भले ही आपसे बात न करें, उनके सामीप्य से आपकी आत्मा पर प्रकाश पड़ेगा। यह सब प्रक्रिया आनन्-फानन में नहीं होती। बदलाव धीरे-धीरे आएगा क्योंकि आपकी आत्मा पर मन की तरंगों का पर्दा पड़ा हुआ है। आत्मा जो मन ओर इन्द्रियों से दबी पड़ी है शनैः-शनैः ऊपर आने लगती है ओर चैतन्य होने लगती है।

घूमफिर कर बात फिर वही आती है कि अपने अंतर में प्रवेश कैसे किया जाये ? इसके लिए मार्ग भी केवल एक ही दिखाई देता है कि किसी महापुरुष की खोज की जाये जिसने आत्मा का रहस्योद्घाटन कर लिया हो। जिसने आत्मा परमात्मा का रहस्योद्घाटन नहीं किया है

वह आपको भी उस तक पहुँचने का मार्ग नहीं बता सकता है। गुरु अर्जुनदेव का कहना है कि इस विषय में किसी भी प्रकार का संदेह नहीं रहना चाहिए कि भवसागर पार करने के लिए गुरु का होना आवश्यक है ।

संसार में हम जो कुछ भी सीखते हैं वो कोई न कोई सिखाता ही है, वही अध्यापक है, वही गुरु है। उसी तरह आध्यात्म मार्ग में चलने के लिए गुरु की ज़रूरत पड़ती है । उन्हीं की शिक्षा पर चलकर हम अपने अंतर में प्रतिपल हो रहे ' नाद ' को सुन सकने में समर्थ होते हैं और सुन्न महल में ज्योति प्रज्वलित कर पाते हैं। ऐसा साधन सद्गुरु ही बता सकते हैं। अतः उन्हीं की खोज करनी चाहिए। समय चाहे जितना लग जाये, घबराना नहीं चाहिए। सांसारिक सुखों की तलाश में तो व्यक्ति अपना जीवन लगा देता है, तब क्या अगर लगन के साथ गुरु की खोज करें तो क्या वह नहीं मिलेंगे ? चाहे दस जन्म लग जाये, गुरु की तलाश जारी रखना चाहिए। सबसे बड़ी बात यह है कि बिना बोले बिना पूछे वह आपके प्रश्नों का उत्तर देंगे । आपका प्रश्न क्या है, कहने की ज़रूरत नहीं है। उनसे आपका सम्पर्क जितना ही बढ़ता जायेगा आप अपनी कमज़ोरियों को समझकर उन्हें दूर करने में सक्षम हो जायेंगे ।

उनके सानिध्य का प्रभाव यह होगा कि आप अपनी इन्द्रिय जन्य दुर्बलताओं को पराभूत कर सकेंगे। वह कभी रूपये- पैसे की मांग नहीं करता। हाँ, एक न्यास अवश्य होता है जिसमें अपनी सुविधा और सामर्थ्य अनुसार लोग कुछ धन एकत्र करते हैं जिसको गरीब बच्चों की पढ़ाई, लड़कियों की शादी, असाध्य रोग मन जो लोग दवा इलाज नहीं करा पाते उनकी सेवा में और असाध्य विधवाओं की सहायता में खर्च करने को कहते हैं। वे मान बढ़ाई के भूखे नहीं होते। वे केवल परमार्थ की शिक्षा देते हैं, अपने शिष्यों को आंतरिक सम्भाल भी करते रहते हैं। उनकी तालीम हृदय से हृदय को होती है ताकि अटूट रिश्ता जुड़ जाए और चारित्रिक हालत सम्भल कर शिक्षा स्वयं अंतर में उतरती जाए। उनकी शिक्षा ऐसी होती है कि दूर परदेस में रहने पर भी मिलती रहती है। यही वह कड़ी है जो गुरु व शिष्य से जुड़ी होती है ' हेच न कुशद नफ्सरा जुलपीर, दरमन आ नफ्सरा सतगुरु '।

" सिवा गुरु की मेहरबानी के कोई तेरे मन के विकारों को दूर नहीं कर सकता। ऐसे गुरु का पल्ला मज़बूती से पकड़ो, कहीं छूट न जाये। "

तन मन ताके दीजिये, जाके विषया नाहीं !
आपा सर से छाँड़ि के राखे साहिब माहीं !!
मन दिया तो सब दिया मन के संग शरीर !
अब देवे को क्या रहा यो कथ कहे कबीर !!
तन मन दिया तो सब दिया सर का गया है बार !
जो कबहुँ कहे नहीं दिया बहुत सहेगा मार !!
तन मन दिया तो क्या दिया, निज मन दिया न जाए !
कहें कबीर ता दास से, कैसे मन पतियाय !!
तन मन दिया आपना निज मन ताके साथ !
कहें कबीर न भय भया सुन सतगुरु परसंग !!
निज मन तो चरनन किया चरन कमल की ठौर !
कहें कबीर गुरुदेव बिन नजर न आवे और !!

बाहर गुरु का दर्शन करो, अन्दर गुरु का साक्षात्कार करो और अपने आपको प्रकाश स्वरूप बना लो। टटोल टटोल कर परमार्थ की राह चल रहे हो, उससे कुछ फ़ायदा न होगा। रास्ते का भेदी साथ ले लो, रास्ता आसानी से कट जायेगा। क्या अब तुमने गुरु की महिमा जान ली ? अगर जान ली तो तुम मुबारक हो। (संत वचन भाग ७ पृ०सं० - १०० - १०४)

सभी धर्मों का विश्वास है कि संसार में जब-जब ऐसा अन्धकार छा जाता है कि धर्म का प्रकाश अन्धकार से धीमा पड़ने लगता है जनसाधारण से लेकर राजा, विद्वजन सभी अज्ञान की लपेट में आ जाते हैं, सत्य और वास्तविकता का ज्ञान नहीं होने पाता, चारो ओर त्राहि-त्राहि मच जाती है, नेकी बदी में परिवर्तित हो जाती है, धार्मिक अनुष्ठान और धार्मिक पुस्तकों का लोग मज़ाक उड़ाने लगते हैं, सत्य पर चलने वालों को उस समय के लोग प्रताड़ित करने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखते। ऐसी अवस्था जब समाज व देश की हो जाती है तब परमात्मा

की और से कोई पवित्र आत्मा संसार में आती है जो अपने प्रेम से लोगों का मन आकर्षित करके सन्मार्ग पर लाने की चेष्टा करती है।

अवतार तो अधर्मियों का नाश करके समयानुसार धर्म का मार्ग दिखाकर अपने निजधाम लौट जाते हैं, लेकिन अपने लक्ष्य को आगे बढ़ाने, उसके प्रसार और भूले-भटके लोगों को राह दिखाने के लिए अपने साथ किसी को लाते हैं। उन्हीं को संत कहते हैं, जो अपने गुरु के शेष कार्यों को प्रेम रूपी शस्त्र के सहारे लोगों को उचित मार्ग दर्शन करते हैं।

सन्त दो प्रकार के होते हैं - एक तो वह जो सचखंड से आते हैं और जीवों का उद्धार करने के लिए मनुष्य चोला धारण करते हैं। दूसरे वह जो उनकी संगति में रहकर आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करके अभ्यास द्वारा उस स्थिति को प्राप्त करते हैं।

सचखंड से आने वाली आत्माएं अपने साथ कुछ ऐसी आत्माओं को लाती हैं जो अपनी किन्ही छोटी-छोटी इच्छाओं के शेष रह जाने के कारण सचखंड तक नहीं पहुँच पातीं और ब्रह्माण्ड में ठहरी रहती हैं। इन्हीं आत्माओं में से किन्ही एक दो को चुन लिया जाता है, जो अवतरित सन्त के निर्वाण प्राप्ति के बाद ब्रह्म विद्या का प्रसार करते हैं। ऐसे ही संतों में से एक थे डॉ। श्रीकृष्ण लाल भटनागर जिनको महात्मा रामचंद्र जी महाराज (लालाजी) अपने साथ लाये थे। वह उनके मुराद (गुरुमुख शिष्य) थे। अपने निर्वाणोपरांत लालाजी ने धर्मोपदेश प्रचार व प्रसार का कार्य उन्हीं के हाथों सौंपा था ।

सन्त किसी प्रकार के दिखावे, रीति-रिवाजों, कर्मकाण्ड, रहनी-सहनी या चिन्ह, भेष आदि का प्रचार नहीं करते। वे जाति-पाति, राष्ट्र-देश आदि बन्धनों से मुक्त होते हैं। सन्तों की शिक्षा के अनुसार पाँच अवस्थायें होती हैं :

१. **साधक** - वह व्यक्ति जो दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उनके बताये हुए नियमों का पालन करते हुए अंतर में ईश्वर प्राप्ति के मार्ग पर चलने का प्रयत्न करता है।

२. **ज्ञानी** - वह है जो ब्रह्मगति को प्राप्त कर लेता है। ब्रह्म पद सारे ज्ञान का मुख्य आधार है। तीनों गुण पाँचों तत्व की उत्पत्ति इसी स्थान से हुई है। अनेक योगी ज्ञानी इसी को सबसे ऊँचा स्थान मानते हैं। हमारे यहाँ सन्तमत में इससे भी आगे का स्थान माना गया है।

३. **साधु** - जो पारब्रह्म के स्तर पर पहुँच जाता है वही साधु है।

४. सन्त - यह वह अवस्था है जहाँ व्यक्ति परमात्मा से अभेद हो जाता है, बूँद सागर में मिलकर

सागर बन जाती है।

५. शिष्य - उसे कहते हैं जो उनके बताये आध्यत्मिक मार्ग पर चलकर प्रथम स्तर पर ज्योति के दर्शन या शब्द को सुनता है।

' अब्बले माँ आखिरे हर मुंतहीस्त आखिरे माँ जेबे तमन्ना तिहीस्त '

(भावार्थ - मेरा प्रारम्भ तो वहाँ से होता है जहाँ औरों की समाप्ति है और मेरा समाप्त वहाँ है जहाँ इच्छाओं की जेब खाली हो जाती है।)

हर देश, जाति व धर्म के सन्तों का यही कहना है कि परमात्मा कहीं बाहर नहीं हमारे अन्दर ही है। ईश्वर एक है और वही सत्य है।

इसी तरह शिष्य भी कई प्रकार के होते हैं। प्रथम श्रेणी के शिष्य वे हैं जो गुरु के आशिक (प्रेमी) होते हैं। सिर्फ गुरु से मुहब्बत करते हैं और उनका अनुसरण करके अपनी स्थिति को बदलते जाते हैं। बिना कहे अपने शुद्ध मन से गुरु के भाव समझ जाते हैं और इस तरह भाव बदलते हुए वे स्वतः गुरु रूप बन जाते हैं। उन्हें गुरुमुख शिष्य (मुराद) कहते हैं।

दूसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं जो गुरु के कहे पर तो चलते हैं परन्तु कुछ परेशानी का अनुभव करते हैं, फिर भी हृदय पर नियंत्रण करके चलते रहते हैं। इन दूसरी श्रेणी वालों को मोक्ष तो मिल जाता है परन्तु दो चार जन्म लग जाते हैं।

तीसरी श्रेणी के वे लोग हैं जो गुरु की बात एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देते हैं परन्तु सत्संग बराबर करते रहते हैं। समय तो लगता है, परन्तु उद्धार इनका भी हो जाता है।

सत्संगी से आशय है अधिकारी होना और सत का संग करना। 'सत' कहते हैं सच्चाई या यथार्थ को और 'संग' नाम है प्रेम, मिलाप और संग रहने का। जो सत्य का जानने वाला हो, सत्य प्रिय हो और सत्य दर्शी हो वही सत्संगी कहलाने का अधिकारी है। सत्संगी का दूसरा नाम ही अधिकारी हैं, जिसको जिज्ञासा है, जो पात्र है, जो योग्यता रखता है और वास्तव में सन्त के साथ रहकर उनकी कृपाधार का लाभ उठाता है। पहले गुरु की वाणी को सुनते हैं, यह सगुण उपासना है। परन्तु जब वाणी पर मनन करके उसके अर्थ पर आ जाते हैं तब यह निर्गुण

उपासना है। शब्दों का श्रवण वाह्य रूप है और उन शब्दों का अर्थ कल्पना का आन्तरिक रूप है जो निर्गुण है। इस प्रकार सत्संग में बैठकर लोग निर्गुण और सगुण दोनों उपासनाएँ एक साथ करते हैं, किन्तु उन्होंने अभी गुरु धारण नहीं किया है।

' अधिकारी ' - 'अधि' का अर्थ है अधिक और 'कारी' का अर्थ है करने वाला। श्रवण और मनन उसका गुण है। जब मनुष्य की रूचि ईश्वर की ओर होती है, उसके मन की इच्छाएं तथा आन्तरिक भावनाएं उसे ईश्वर की ओर प्रेरित करती हैं और उसी के अनुरूप वह कार्य करने लगता है तब वह अधिकारी की श्रेणी में आ जाता है। (सन्त मत प्रवेशिका ५५-५६)

सच्चा सत्संगी, व्यक्ति तभी कहलायेगा जब वह 'यम' और 'नियम' का पालन करेगा। असत्य भाव और असत्य विचारों को छोड़ना 'यम' कहलाता है। यम निष्कासन (निकालना) को कहते हैं। सत भाव और सत विचार अपनाने को 'नियम' कहते हैं। यम मिथ्या है और नियम सत्य है। अपने हृदय के पात्र को मिथ्या विचारों से रहित करके स्वच्छ करना यम और उसमें सत्य विचार भरना नियम के अन्तर्गत आता है।

यह है सन्त और उनका मत। वास्तव में जो साधु और सन्त गुणों के झमेले से आगे जाने का प्रयत्न करे और कराये वही सन्त है और जिन उद्देश्यों को लेकर किया जाये वही संतमत है। ऐसा व्यक्ति सब मतों की वास्तविकता को जानकर दया की दृष्टि से सबको अपनाता है और किसी से विरोध इसलिए नहीं करता क्योंकि सब मत उसके अन्दर हैं। वह सब सन्तों से ऊँचा है। जो जिज्ञासु उसके संपर्क में आते हैं बिना किसी भेद भाव के निःस्वार्थ होकर उनके आध्यात्मिक दृष्टिकोण को ऊँचा करना और कराना चाहता है।

0000000

गुरुदेव, आचार्यपद व आध्यात्मिक विद्या

(परिचय सुरत-शब्द योग)

जिला बुलंदशहर के एक छोटे से कस्बे - सिकन्द्राबाद, के कायस्थ परिवार में आपका (डॉ श्रीकृष्ण लालजी महाराज का) जन्म हुआ था। इस देश की धरती तो धन्य है, परन्तु धन्य है वह वंश कुल जहाँ ऐसे संत का अवतरण हुआ। उन्होंने केवल अपने कुल व जाति को ही धन्य नहीं किया वरन जहाँ-जहाँ उनके चरण पड़े ,वह भूमि पवित्र हो गई।

भाग्यशाली हैं वह लोग जिन्हें उनके चरणों में बैठने का सौभाग्य मिला और अतिभाग्यशाली वे हैं जिन्हे इस धर्मोपदेश (मिशन) को आगे बढ़ाने व सेवा करने का कार्यभार मिला है । आपके गुरुदेव महात्मा रामचंद्र सहाय थे जो कि बाद में रामचंद्र जी महाराज (लालाजी) के नाम से विख्यात हुए । दिव्य आत्माएं बहुधा बसंत पंचमी के ही दिन प्रकट होती रही हैं । हमारे पूज्य लालाजी महाराज का अवतरण भी बसंत पंचमी ४ फरवरी १८७३ को फतेहगढ़ (फरुखाबाद) में हुआ । आपके गुरु मौलाना फ़ज़ल अहमद खान साहब थे । उन्होंने अपनी साड़ी आध्यात्मिक विद्या लालाजी महाराज को सौंप दी और कहा कि जाओ और इस विद्या को हिन्दुओं में ही नहीं समस्त मानव जाती की भलाई के लिए, बिना किसी भेदभाव के फैलाओ। यही लालाजी महाराज के गुरु थे जिनको उनके गुरु ने कहा था कि तुम्हारे पास एक हिन्दू लड़का आएगा। उसे यह विद्या दे देना । इस विद्या का प्रचार हिन्दुओं में खूब होगा । उस काल में हिन्दुओं में आंतरिक साधन का पतन हो चला था। यह देखा गया है कि जब-जब आध्यात्मिक अवनति होती है तब-तब कोई महान आत्मा दयाल देश से पृथ्वी पर धर्म की रक्षा के लिए आती है। आध्यात्मिक शक्तियों द्वारा वह उनका उद्धारकर्ता बन जाती है। काल-देश के अनुसार उचित-अनुचित का ज्ञान कराकर लोगों को सत पथ पर लगाती है। ऐसे ही समय में वक्त के पूरे सूफी संत शिरोमणि अहमद अली खां ने अपने गुरुमुख शिष्य हज़रत फ़ज़ल अहमद खान को यह भविष्यवाणी की थी, जो समय आने पर पूर्ण सत्य हुई। बिना किसी जाति धर्म के भेद भाव के ब्रह्म विद्या के इस अलौकिक भण्डार को उन्होंने पूज्य लालाजी और उनके छोटे भाई को सौंप दिया । पूर्ण लालाजी पूर्ण ब्रह्मवेत्ता थे। विशेषकर चक्र भेदी विद्या का उन्हें अच्छा ज्ञान था। संत अपनी दार्शनिक विद्या के प्रचार के लिए अपने साथ कुछ आत्माओं को लाते हैं।

उनमें से एक थे हमारे पूज्य गुरुदेव डॉ। श्रीकृष्ण लाल भटनागर। पूज्य लालाजी महाराज ने आध्यात्मिक विद्या के सभी गुणों से गुरु महाराज को मालामाल कर दिया था ।

सुरत शब्द योग - सन्तमत के परमार्थ और अन्य मतों के परमार्थ में काफी अंतर है। अन्य मतों में शुभ कर्म करना, गरीबों-दुखियों की सेवा करना, धर्मशाले, मंदिर आदि बनवाना, तीर्थव्रत करना, यानी सत पर चलना - इसी को परमार्थ कहते हैं। यह सतोगुणी मन का रूप है। मन के तीन रूप हैं - तम, रज और सत। तम में अच्छाई बुराई का ख्याल नहीं रहता क्योंकि यह अवस्था मूर्खता और अज्ञान की है। इसमें सिवाय इन्द्रिय -भोग , आलस्य और निचले स्तर की वासनाओं की पूर्ति के आगे कुछ नहीं है। इसका स्थान 'नाभी' में है जिसका संचालन सीमित परधि में यांत्रिक ढंग से होता है। रज - में अच्छाई-बुराई दोनों का ख्याल अदल-बदल कर आता है। यह आम मनुष्यों की हालत है जिनमें बुद्धि विचारशील है। सत - में हमेशा अच्छाई, नेकी और ईश्वर भक्ति तथा शुभ कर्मों का ख्याल रहता है, वैसा ही कर्म करता है। ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ सत का विचार रहता है वहाँ असत छुपी हुई शकल में रहता अवश्य है। सत तस्बीर का सीधा पहलू है तो असत उल्टा। मन इस तीसरे स्थान यानि सत पर आकर शान्त हो जाता है परन्तु सन्तमत का परमार्थ तो इससे और ऊँचा है। आत्मा - जिससे मानव इन्द्रियों के सभी कार्य संचालित होते हैं इसके प्रभाव से निकलकर अलग हो जाये और ईश्वर में, जिसकी वह अंश है, लय हो जाए ।

" अक्वले माँ आखिरे हर मुंतहीस्त, आखिरे माँ जेवे तमन्ना तिहीस्त " अर्थात् आरम्भ तो वहाँ से होता है जहाँ औरों की समाप्ति है और समाप्ति वहाँ है जहाँ इच्छाओं की भी जेब खाली हो जाती है।

हमारे यहाँ सन्तमत में परमार्थ का प्रारम्भ वहाँ से होता है जहाँ दूसरे मत वाले खत्म करते हैं। अन्य मतों में सत पर चलना ही परमार्थ है, यह ब्रह्माण्ड ही उनका लक्ष्य है, वहीं इनकी इन्तहा (समाप्ति) है। किन्तु हमारे यहाँ इसी स्थान से परमार्थ का प्रारम्भ होता है । प्रीतम का घर अभी बहुत दूर है, हमारी मंज़िल का प्रारम्भ तो अब होता है। हमारी समाप्ति वहाँ है जहाँ सभी तरह की इच्छाओं और आकांक्षाओं का लेशमात्र भी अस्तित्व नहीं रह जाता। यानि अपना अलग अस्तित्व न रखकर परमात्मा में लय हो जाये, क्या छोड़ना है, क्या पाना है - यह इच्छा भी शेष रह जाये ।

" तर्कें दुनियाँ तर्कें उक़बा, तर्कें मौला, तर्कें तर्क " अर्थात दुनियाँ के ख्याल को छोड़ो, स्वर्ग के ख्याल को छोड़ो, और अन्त में छोड़ने के ख्याल को भी छोड़ दो - कुछ भी बाकी न रह जाए।

सन्तों ने भक्ति मार्ग को गुरुमत कहा है और जिस मार्ग में प्रेम और भक्ति नहीं है उसे मनमत कहा है। भक्ति मार्ग की विशेष महिमा बताई गयी है क्योंकि यह दया और कृपा का मार्ग है। ऐसी भक्ति सतगुरु के सत्संग से प्राप्त होती है क्योंकि उन्हीं से कुलमालिक का भेद प्राप्त होता है। सतगुरु प्रेम का अथाह सागर हैं, ब्रह्म और पारब्रह्म उसकी लहरें हैं। जीव प्रेम की एक बून्द है जो अपने स्रोत से अलग इसलिए है क्योंकि उसके साथ मन और माया लगी हुई है। जीव के साथ इच्छा लगी है, इसीलिए सच्चा प्रेम नहीं हो पाता।

यदि सचमुच कोई इस बात का इच्छुक है कि उसका संसार में उद्धार हो जाए तो उसे प्रेम मार्ग पर चलना होगा। ऐसे महापुरुष को खोजना होगा जो इस मार्ग पर चल चुके हों और दयाल देश तक पहुँच गए हों, वही उस धाम तक पहुँचने का भेद बता सकते हैं। ऐसे सतगुरु से नितयोग (प्रेमयोग) हो जाए तो फिर कहना ही क्या ? सुरत का फैलाव इस दुनियाँ में हो रहा है, उसे अपने विचारों द्वारा समेटकर अंतर में हो रहे शब्द में लगाने की युक्ति सहज ही सन्तमत में गुरु बता देते हैं जो अन्य मतों के साधन से कहीं सरल है।

सन्तमत और औषधि विज्ञान (medical point of view) के अनुसार मनुष्य के शरीर में सिर की चोटी के पास मस्तिष्क में दो ग्रन्थियाँ हैं जिन्हें सेरिब्रम (cerebrum) और सेरिबेलम (cerebellum) कहते हैं। सेरिब्रम का नाम ही शिरोब्रह्म है। इन्हीं दोनों ग्रन्थियों के बीच में छोटा सा रिक्त स्थान है जिसे स्वर्णमय कोष कहते हैं। यहीं आत्मा का वास है। आत्मा जोकि परमपिता परमात्मा की अंश है और उसी से सारे शरीर को ऊर्जा मिलती है और शारीरिक क्रियाओं का संचालन होता है। इसीलिए हिन्दुओं में मरणोपरान्त दाहसंस्कार में कपालक्रिया करने की प्रथा है ताकि आत्मा ब्रह्मकोष से निकल जाए। यह ऊर्जा शक्ति जिसे शब्द गूँज (vibration) कहते हैं वह मनुष्य शरीर के हर शिराकेंद्र (nervous centres) पर हो रहा है। प्रत्येक केन्द्र की आवाज़ अलग-अलग है। उसको अलग-अलग मतों में अलग-अलग नाम दिए गए हैं। रक्त के दबाव के कारण इन केंद्रों को प्रेशर प्वाइंट्स (pressure points) कहते हैं। यह आवाज़ या गूँज उस सुरत की है जो दयाल देश से उतर कर हर मानव चोले में सक्रिय है। इसका ऊपर के स्थान से नीचे को उतार होता है और यह जिन अलग-अलग घाटों पर ठहर जाती है उसकी गूँज या आवाज़ की धुन भी बदलती जाती है। कहीं घंटे की, कहीं मुरली और

कहीं बीन की सी ध्वनि होती है। यहाँ पर यह आशय नहीं कि कैसी आवाज़ किस विशेष स्थान पर होती है। कहना यह है कि उस गूँज में सुरत को स्थिर करके उसके सहारे नीचे से ऊपर की चढ़ाई करने का अभ्यास करना चाहिए। इस कार्य में सतगुरु से मदद लेनी ही पड़ेगी। बिना उसके सहारे के जीव की सामर्थ्य नहीं कि वह इस अभ्यास को अपने भरोसे कर सके। जब चढ़ाई करेगा तो पहले बूँद सिंधु में समा जाएगी, यानि गुरु में लय हो जायेगा - जिसे सूफियों में फनाफिल शेख कहते हैं, और इससे आगे चलकर अनामी पुरुष में लय हो जायेगा - जिसे सूफियों में फनाफिल रसूल कहा गया है। इसके पश्चात् आदि पुरुष में लय हो जाएगी जिसे सूफियों में फनाफिल अल्लाह कहते हैं। इसी का नाम सच्ची मुक्ति या उद्धार है।

सन्तों में प्राणायाम की प्रथा नहीं है क्योंकि इस विधि द्वारा प्राणों को काबू किया जा सकता है, मन को नहीं। जब तक मन नियंत्रण में नहीं आएगा तब तक सुरत-शब्द योग की क्रिया करना सम्भव नहीं है। एक बात और है - प्राणायाम में जैसे खान-पान की आवश्यकता होती है वह अब सहज उपलब्ध नहीं है और ना ही अब मनुष्य का शरीर ही उस क्रिया को करने के योग्य है। इसीलिए सन्तों ने कृपा करके जीव के उद्धार के लिए मार्ग को सहज कर दिया है। नीचे के सारे चक्रों को छुड़ाकर सीधे आज्ञाचक्र यानि छठे चक्र से साधन की क्रिया प्रारम्भ होती है। गुरु के साथ कुछ दिन अभ्यास करने के पश्चात् जब शिष्य को शब्द या प्रकाश दिखने लगता है तब गुरु सामने से हट जाता है और पीछे से उन्नति पथ पर अग्रसर होने में शिष्य की मदद करता है। यह स्थिति तब आती है जब शिष्य को दसवें स्थान पर पहुँच कर आत्मसाक्षात्कार होने जाता है। उस समय से उसका मुख्य गुरु, शब्द या प्रकाश हो जाता है। शरीरधारी गुरु का आन्तरिक अभ्यास में रूप दिखाई नहीं पड़ता। आत्मसाक्षात्कार के समय जो स्थिति होती है उसे ही शिष्य 'अहम ब्रह्मास्मि' कहने लगता है। सन्तमत का यह अन्तिम लक्ष्य नहीं है। यह माया के सीमा पार का स्थान नहीं है। इसमें लय होने वाले व्यक्ति आयु के साथ साथ जन्म लेंगे और मरेंगे। सन्तमत में और आगे के धाम बताये हैं जिसे दयाल देश कहते हैं। यहाँ माया का राज्य नहीं है। यह वह स्थिति है जहाँ पहुँचकर जन्म मरण से छुटकारा मिल जाता है। मरने पर तो संस्कार कट ही जाने हैं परन्तु जीते जी संस्कारों का कटना माया पर से पर्दे का उतरना है। इस तरह जब जीते जी माया के पर्दे उतर जाते हैं तब आत्मा निर्लेप हो जाती है। यही मोक्ष है।

नव दर ठाके धावेतू रहाए ! दसवें निज घर वापस पाए !!

ओथे अनहद सबद वाजहि दिनुराती गुरुमती सबदु सुणावाणियाँ !!

सन्त शिष्य की आत्मा को सहज ही शरीर के नौ द्वारों से हटाकर दोनों आँखों के पीछे तीसरे टिल पर केंद्रित कर देते हैं, और यहीं से आत्मा आन्तरिक मण्डल में प्रवेश करती है। यहीं से यानि आज्ञाचक्र से एकलय होकर अनहद नाद को पकड़ती है और आगे बढ़ती चली जाती है और परमपिता परमात्मा में लय हो जाती है।

सुरत अथवा शिष्य की आत्मा की जिहवा द्वारा सुमिरन और सुरत की आँखों द्वारा ध्यान को केंद्रित करना तथा सुरत के कानों से अनहद नाद को सुनना ही सब साधनों का सार है। इसी को **सुरत शब्द योग** कहते हैं। शब्द सुरत का स्रोत है। इसी को सुनकर सुरत बेबस होकर उसकी ओर आकर्षित होती चली जाती है। इस ध्वनि को शारीरिक ओर भौतिक राग द्वारा नहीं सुना जा सकता है। आत्मा द्वारा ही इसे सुना जा सकता है।

इस सुरत शब्द योग की उपासना के लिए ऐसे महापुरुष के शरणागत होना पड़ेगा जिन्होंने इसका अभ्यास किया हो। इस योग की पूर्णता संतों की संगत में ही हो सकती है। इस योग की पूरी युक्ति सतगुरु दीक्षा देते समय समझा देते हैं और इस साधना के बीच में आने वाली रुकावटों के विषय में भी सावधान कर देते हैं। इसीलिए सतगुरु की खोज करके उनसे नाम लेना ज़रूरी है।

यह एक आम धारणा है कि सच्चा परमार्थ संसार से वैराग्य लेने पर ही मिलेगा। परन्तु हमारे गुरुदेव कहा करते थे कि दुनिया छोड़कर सन्यासी बनाने की ज़रूरत नहीं है। दुनिया में रहकर दुनिया से वैराग्य लो -यही सच्चा परमार्थ है। अवतारी पुरुषों ने अपनी रहनी-सहनी से सिद्ध कर दिया कि संसार में शहद की मक्खी की तरह रहे, वह फूलों का रस तो चूस ले पर न उसको बिगाड़े न बदसूरत ही करे। भगवान राम ने घर गृहस्थी सबको भोगते हुए अमरत्व प्राप्त किया। अनेक सूफी सन्त, अपने सिलसिले के पूज्य लालाजी महाराज, चच्चा जी महाराज और अपने पूज्य गुरुदेव डॉ। श्रीकृष्ण लालजी, ने गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए ईश्वर का साक्षात्कार किया। तथा गृहस्थियों को उस परम् आनन्दमय परमात्मा को प्राप्त करने के लिए प्रेम की गंगा बहा दी। इस प्रेमगंगा का जल पीने के बाद वह अतृप्ति किसी और पानी को पीने से तृप्त नहीं हो सकती। धनी अपने स्रोत से अपने प्रिय को प्यासा नहीं देख सकता है। परन्तु उस तट तक पहुँच तो जाए, फिर तो वह उस अमरत्व के सलिल से स्वयं ही तृप्त हो जायेगा एवं तन से कलुष धुल जायेंगे। इस गंगाजल को पान करते ही दुःख, संताप। क्लेश सब शांत हो जायेंगे। अंदर बाहर सब शाश्वत। असली लक्ष्य ईश्वर को जानना ही है। यही है मनुष्य जीवन का आदर्श और यही है प्रेमा (चरित्र पराग पृ। ४४-४५)

सन्त मत की नीव प्रेम है। वह प्रेम जिसकी वजह न मालूम हो और जिसके बिना रहा न जाए। उस अद्वितीय प्रेम के लिए अंतरदृष्टि, अनुभूति चाहिए। यह देखा तो जा नहीं सकता सिर्फ अनुभव किया जा सकता है। इसीलिए यदि गुरु से प्रेम हो जाए तो कल्याण हो जाये क्योंकि परमात्मा की सभी शक्तियाँ उसमें निहित होती हैं।

' आशिकी से मिलेगा ये जाहिद

बन्दगी से खुदा नहीं मिलता '

इस सिलसिले में आत्मा का सम्बन्ध प्रेम का है। पहले गुरु में शिष्य के प्रति प्रेम होता है और फिर शिष्य में प्रेम की हिलोरें उठती हैं और दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। यही असली शिक्षा है। दोनों का मिलकर एक हो जाना ' निस्वत ' या आन्तरिक सम्बन्ध कहलाता है। यही सच्चा प्रेम मार्ग है ।

जो शिष्य प्रेमी स्वभाव के होते हैं उन्हें गुरुमूर्ति का ध्यान करने की आज्ञा होती है। हर एक शिष्य को गुरुमूर्ति का ध्यान नहीं बताया जाता। प्रत्येक व्यक्ति को जैसा ठीक समझते हैं वैसा अभ्यास बताते हैं। अगर गुरु से सच्चा प्रेम हो गया तो अकेला इसी प्रेम का खिंचाव उसे निकाल ले जायेगा। यह आन्तरिक प्रेम तो ऐसा है कि दूर विदेश में भी शिष्य रहे तो उसे गुरु के ख्याल से लाभ मिलता रहेगा ।

मिली नर देह यह तुमको

बनाओ कुछ काज अपना

कितने आश्चर्य की बात है कि हमारे रहने के लिए ही इस पृथ्वी की रचना हुई, परमात्मा ने हमें हर प्रकार की सुख-सुविधाएँ भी दीं परन्तु अपने अज्ञान के कारण हम दुःख भोग रहे हैं।

000000

ध्यान

जो व्यक्ति (गुरु) परमात्मा की तरफ ध्यान लगाए हुए है, उससे मिलकर दूसरा व्यक्ति (शिष्य) भी उतना ही तेजस्वी हो जाता है, ऐसे चमकने लगता है जैसे असली सूरज चमक रहा हो। (जो एक वक्त में मन के स्थान पर रहता है उनके सम्पर्क में आकर अब आत्मा के स्थान पर आ गया) अगर हमारा सम्बन्ध भण्डार (परमात्मा) से हो जाये तो हम बहुत शक्तिशाली हो जायेंगे। जो शक्ति से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, वह गुरु है। जिन लोगों का विश्वास ईश्वर पर है वह सत्संगी हैं और वही इस हल्के (दायरे) में बैठने के अधिकारी हैं। जो व्यक्ति मन या माया के साथ पर है उनकी सत्संग में बैठने से हानि होने की आशंका रहती है। साधन मन का है, आत्मा एक है और सब जगह एक ही काम कर रही है। एक सूरज है लेकिन उसका रौशनी सब पर पड़ती है। परमात्मा का माइन्ड (धार) एक है। जब सब माइन्ड (धार) मिल जाते हैं तो सब पर उसका असर पड़ता है। आगे चलकर सब माइन्ड (धार) एक हो जाते हैं। जिस तरह दो विरोधी लक्ष्यों के साथ व्यक्ति ऊपर नहीं चढ़ सकता उसी तरह हल्के (दायरे) में एक के चरित्र का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। हल्का ऐसी तरह बांधते हैं जो स्थान सबसे अंदर हो, जहाँ शोर न हो। उसके बाद उन लोगों को बैठने की इजाज़त देते हैं जो परमात्मा को मानते हैं। इसको हुजूरी कहते हैं। हुजूरी का मतलब है कि हम सब परमात्मा को सब जगह देख रहे हैं। गुरु सबको हल्के के अन्दर कराता है। मॉनिटर्स (monitors) मदद करते हैं। मानीटर्स का काम है कि सब आदमियों के खांसी, खकार, खुजली को अपने ख्याल से रोक दें। सब लोग अपने ख्याल को गुरु में लगाते हैं और गुरु अपना ख्याल परमात्मा में। इस तरह bliss यानी परमात्मा का प्रेम गुरु अपने गुरु यानी परमात्मा के ध्यान में लगा कर नीचे की ओर फेंकता है। अभ्यासी सत्संग में ध्यान करते हैं। मन की हालत को देखते हैं, गुरु को देखते हैं। वाज़ यह सोचते हैं कि प्रकाश आ रहा है। इससे दुगना फायदा होता है। यह सत्संग है। अगर किसी को ख्यालात सताने लगे ओर ध्यान न जमता हो तो उसको उठकर हल्के से बाहर चला जाना चाहिए। यह उस चीज़ का नाज़ुक सिलसिला है। यह सत्संग है। गुरु ऊपर से फ़ैज़ लाकर आपके ऊपर व हृदय में डालते हैं। अभ्यास में यह फ़ैज़ गुरु के द्वारा लिया जाता है। भक्त अपनी शक्ति गुरु में अनुभव करता है। इसीलिए भक्त में अभिमान नहीं होता। भक्त चाहे परमात्मा बन जाये परन्तु वह गुरु को नहीं छोड़ता। वह 'मैं' नहीं कहता ओर जो कहता है वह मन का गुलाम है। मन का साधन मुशिकल है। योग क्रिया करनी पड़ती है। सात पर्दे चीर कर आत्मा के नज़दीक आते हैं। लेकिन भक्तों (मुरीद या विशेष शिष्य) को केवल दो ही पर्दे चीरने पड़ते हैं।

एक मन का दूसरा आत्मा का गुरु में जिस्म व आत्मा है, प्रकाश आवेगा तो जिस्मानी गुरु का ध्यान जाता रहेगा। भक्त (मुरीद) को पर्दे भी नहीं चीरने पड़ते अगर उसको पूरा विश्वास अपने गुरु में है तो गुरु छः महीने में दर्शन करा देगा। बाकी उम्र में पुख्तगी ओर सैर होती है। गुरु फिदायी हो ओर मुरीद शैदाई हो। मुर्दे ओर मुरीद में सिवा जान के और कोई फर्क नहीं होता। जो मुरीद अपने को गुरु के हाथों पूर्ण समर्पण कर देता है उसका काम बहुत जल्दी बन जाता है।

सत्संग में द्रष्टा बन कर देखते रहते हैं कि मन की क्या हालत है। अगर हम दुनिया के काम द्रष्टा बन कर देखें, तो हम शीघ्र मोक्ष गति को प्राप्त होंगे। जो आत्मा का अनुभव कर लेते हैं वह अपने को मन या बुद्धि नहीं समझते बल्कि आत्मा (द्रष्टा) समझते हैं। वह दुनिया के सारे काम ऐसे करता है जैसे ड्रामा कर रहा हो। क्योंकि वह अपनी हस्ती को जानता है। यही ज्ञान है। यही ज्ञान यदि पुख्ता हो जाये तो इसे पूर्ण ज्ञान कहते हैं। यही सारे मज़हबों व धर्मों का सार है। इस तरह बैठ कर बिठाल कर जो साधन कराया जाता है उसे संतमत में ' सत्संग ' और सूफियों में हल्का कहते हैं। पहले सब तरह के आदमी सत्संग में आते हैं। फिर बाद में सब नियम (rule) में बंध जाते हैं। कुछ खास लोगों की ओर इंगित करके आपने फ़रमाया अब मेरा आखिरी वक्त है ओर तुमको सम्भालना है इसलिए सख्ती करना है, इतने आदमियों में से यदि एक या दो आदमी भी बन गए तो बहुत काम हो गया। जहाँ अधिक आदमी होते हैं वहाँ व्यक्तिगत ध्यान नहीं दिया जा सकता। गुरु को मेहनत करनी पड़ती है। सोते वक्त वह अपने शिष्यों को तव्वजह देता है। इसमें फासले का सबाल नहीं होता। जो मुरीद जहाँ हैं उनको इससे फायदा होता है। सामने बिठाल कर तवज्जह देने से फायदा होता है। लेकिन इस तरह सोते समय जो तवज्जह दी जाती है उससे बहुत फायदा होता है। शमा जल रही है और यह निमंत्रण है कि आओ और फ़िदा हो जाओ। किन्तु दुनियादार दुनिया में फंसे हैं। जो उसके फिदायी हैं वे खिंचकर चले आते हैं। वह प्रेम में मस्त हो जाता है तो शिष्य लोग उससे फ़ैज़ छीन लेते हैं, इससे मन का घाट बदलता है। यह हमारे यहाँ का फ़ैज़ का तरीका है। बाज़ लोग सामने बैठकर असर ग्रहण नहीं करते, वाज़ लोग करते हैं। जब तव्वजो आती है तब मन अन्दर की तरफ खिंच जाता है और उस वक्त आँख बंद करके उस तवज्जह को ग्रहण करना चाहिए। इससे फ़ैज़याबी होती है। जमात ज़्यादा होने पर यह नहीं हो सकता। अपने विश्वास से आपको फायदा हो जाये तो हो जाए मगर गुरु से फ़ैज़ नहीं आता। हमारे यहाँ का तरीका प्रेम का है। मुराद या फिदायी को अभ्यास नहीं करना पड़ता, बाकी लोगों को करना पड़ता है। फिदायी गुरु के हुक्म पर ही चलता है। ये फिदायी पैदायशी होते हैं। फिदाईयत और फनाईत कर्मों-ज़्यादा

भी होती है। गलत society (समाज) में बैठने-उठने या वर्जित काम करने से कम हो जाती है। हमने जरा सा देख लिया कि अगर गुरुदेव ने जरा भी किसी चीज़ से ध्यान हटा लिया तो फिर उसका ख्याल भी नहीं आता । गुरु शुरु में आपका मन रखता है और आपके जैसी बातें करता है, लेकिन उसे आपके मन को ठीक करना है इसीलिए वह आपके मन को तोड़ता है । चाचाजी महाराज ने तहसीलदार साहब को सख्त लफ़्ज़ में कह दिया कि अगर मैं नौकरी में नहीं रह सकता तो आप भी इस कुर्सी पर नहीं बैठ सकते हैं । जब-जब तहसीलदार साहब ने आकर कुर्सी पर बैठना चाहा तब-तब कभी लड़के की बीमारी, कभी खुद बुखार आदि से पीड़ित होने के कारण कुर्सी पर नहीं बैठ सके । चाचा जी की बात सच हो गयी । तहसीलदार साहब को चाचाजी से माफ़ी माँगनी पड़ी । मगर जब गुरुदेव लालाजी महाराज को मालूम हुआ तो वह बहुत नाराज़ हुए और चाचाजी को सख्त सजा दी । कहा पानी लाओ और रात भर दरवाज़े पर खड़ा रखा और कहा अलीगढ़ चले जाओ । चाचाजी फतेहगढ़ से अलीगढ़ पैदल गए और जब लौट कर आये तो पूछा - लौट आये ? चाचाजी ने कहा - "जी" । गुरुदेव खामोश हो गए । इतनी सज़ा काफी न थी । एक दिन चाचाजी साहब को ज़ोर से जूता मारा और बोले - " फिर इस तरह जबान से बोलेगा ? " चाचाजी ने माफ़ी माँगी और फिर कभी ऐसी भूल नहीं की ।

मुझे लालाजी व चाचाजी ने इज़ाज़त दे दी परन्तु तसदीक (पुष्टी) के लिए मौलवी अब्दुल ग़नी साहब के पास भेजा । मौलवी साहब तसदीक को टालते रहे । फिर मौलवी साहब ने कहा कि मैं इज़ाज़त तब दूँगा जब देख लूँगा और इसके चार साल बाद इज़ाज़त दूँगा ।

इसी तरह चिशितिया ख़ानदान में एक फ़कीर थे निजामुद्दीन उन्होंने ने एक मुरीद की इज़ाज़त तसदीक करने के लिए मुइनुद्दीन चिशती के पास अजमेर भेजा । मुरीद साहब ने तसदीक के लिए जल्दी की तो मुइनुद्दीन चिशती ने इज़ाज़त देने से मना कर दिया।

" गया शैतान मारा, एक सज़दे के न कर ने में

अगर लाखों बरस सज़दे में सर मारा तो क्या हुआ "

अभ्यास क्या है, क्यों कराया जाता है ? अभ्यास इसलिए किया जाता है कि गुरु से जो चीज़ मिले वह पुख़्ता (स्थायी) हो जाये । बद ऐतकादी इस चीज़ को दबाती है । कस्व और अभ्यास से गुरु से मिली चीज़ बढ़ती है । अभ्यास का मतलब यह है कि तुम अपने को तम से रज और रज से सत पर लाओ । गुरु की मोहब्बत से आत्मा को शक्ति मिलती है। अभ्यास से कोशिश करके मन को उस जगह पहुँचा दो जहाँ आत्मा नृत्य करती है । मन को नीची जगह से

उस जगह लाना अभ्यास है । हमख्यालों (एकविचार वालों) के साथ बैठो । सत्संग में आकर अगर ध्यान न लगे तो ख्याल करो कि गुरु सामने बैठा है और उससे फ़ैज़ की धारें निकल रही हैं । आपके हृदय और शरीर को वह धारें प्रकाशित कर रहीं हैं । इससे एक और अच्छी तरकीब ध्यान लगाने की यह है कि सोते समय अपना सर गुरु के क़दमों में रखकर सो जाओ । इस थोड़े से concentration (एकाग्रता) से रात भर फायदा होगा । अपने सर, गुरु के चरणों में रखा और गुरु ने आँख खोली तो वह चीज़ जिसकी आपको तलाश है बहुत जल्दी हासिल हो जाती है । दुनिया मन को बार-बार खींचती है । लेकिन अगर दुनिया के कामों के साथ-साथ अभ्यास रखोगे, सोते वक्त और सुबह उठकर गुरु का ख्याल करोगे तो बहुत जल्द फायदा होगा । सुबह उठकर आँखों पर हाथ रखकर गुरु का ख्याल करने का तरीका बहुत पुराना है।

00000000

गुरु महाराज के प्रवचनों के कुछ अंश

(संत वचन व राम सन्देश से संकलित "अनेकता में एकता")

हमारे यहाँ ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग दोनों को साथ-साथ लेकर चलते हैं। जहाँ तक लक्ष्य का सम्बन्ध है, हमारे यहाँ केवल एक ईश्वर को मानते हैं, जो सब भूतों का आधार है, जो अनन्त है, अनादि है और जो वर्णन में नहीं आ सकता। जो सब ब्रह्माण्डों का मालिक है, सब जगह व्याप्त है, और जो सबकी आत्मा है, सिर्फ उसी एक निर्गुण की उपासना करते हैं। जितने अवतार या पैगम्बर आये, वे उसकी कुछ शक्तियाँ लेकर आये और अपना काम करके चले गए। भगवान् राम चौदह कला लेकर अवतरित हुए और कृष्ण भगवान् सोलह कलाएं लेकर, मगर पूरी शक्ति लेकर कोई नहीं आया। जैसे हमारे देश में अवतार हुए हैं वैसे और देशों में भी हुए हैं। किसी ने उसे ईश्वर का बेटा कहा तो किसी ने पैगम्बर। ईसाइयों में हज़रत ईसा मसीह हुए, जिन्हें ईश्वर का बेटा कहा गया। मुसलमानों में हज़रत मुहम्मद साहब हुए। वे पैगम्बर कहलाये। किसी भी नाम से पुकारो, ये सभी उसी परमात्मा के प्रतिनिधि थे जो केवल एक है। स्वयं वे परमात्मा नहीं थे, बल्कि उसकी शक्तियाँ लिए हुए थे। अन्तिम प्रतिनिधि हज़रत मुहम्मद हुए। उन्होंने भी एक ही परमात्मा 'जाते वाहिद' की इबादत (उपासना) करना बताया है।

उस पारब्रह्म परमात्मा की इबादत या उपासना के लिए जो तरीके हैं उन्हें चार हिस्सों में बाटा गया है। उनके नाम हैं -

१। शरीयत

२। तरीक़त

३। मार्फ़त, और

४। हकीक़त

शरीयत कहते हैं विधि विधान या कर्मकाण्ड को जिससे इन्द्रियाँ शुद्ध रहें और शरीर तन्दरुस्त रहे। जो जिस धर्म में पैदा हुआ है उसके मुताबिक़ उसके रहन-सहन, सामजिक रीतियों पर चलना और बरतना, खान-पान, शादी-विवाह इत्यादि आ जाते हैं। अगर कोई मुसलमान है तो उसको मुसलमानी शरह लाज़िम है, जैसे नुमाज़ पढ़ना, वुजू करना, उसी समाज की प्रचलित पोशाक पहनना, चार से अधिक विवाह न करना, इत्यादि। यदि कोई हिन्दू है तो उसे हिन्दू धर्म

शास्त्र के मुताबिक रहनी-सहनी बनानी चाहिए। यही शरीयत या कर्मकाण्ड है। अपने-अपने धर्मकाण्ड के मुताबिक कर्म करना शरीयत कहलाता है।

तरीक़त कहते हैं उपासना को जिससे मन के विकार दूर होते हैं और वो शुद्ध हो जाता है। मन के तीन रूप हैं। - (क) तमोगुणी मन, जो हमेशा बुराई की ओर ले जाता है। (ख) रजोगुणी मन, जो कभी अच्छाई और कभी बुराई की तरफ ले जाता है, और (ग) सतोगुणी मन, जो हमेशा अच्छाई की तरफ लगाए रहता है। मन की दो तरह की वृत्तियाँ होती हैं - एक मलिन वृत्ति और दूसरी शुद्ध वृत्ति। मलिन वृत्ति भेद भाव पैदा करती है - मेरा लड़का, दूसरे का लड़का, मेरा घर, तेरा घर, दूसरों की दुनियाँ में आदमी हूँ, यह पेड़ है, जानवर है, इत्यादि इत्यादि। शुद्ध वृत्ति पैदा होने से यह सब बातें चली जाती हैं। लेकिन यह बहुत ऊँची अवस्था है जिसमें मन शुद्ध होकर आत्मा में लय हो जाता है। उसका मिथ्यापन चला जाता है।

इसके बाद तीसरी चीज़ है जिसे ' **मार्फत** ' कहते हैं। इसमें बुद्धि शुद्ध हो जाती है। बुद्धि दो प्रकार की है - एक 'परा' और दूसरी 'अपरा' । जो ख्यालात और सोच विचार दुनियाँ और उसके सामान के बारे में आते हैं वे 'परा' बुद्धि के द्वारा होते हैं। जो विचार ईश्वर चिन्तन से सम्बन्ध रखते हैं वे सब 'अपरा' बुद्धि के कारण होते हैं। बुद्धि शुद्ध हो जाने पर विवेक की प्राप्ति होती है। ' मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, यह दुनियाँ क्या है, मेरा इससे क्या सम्बन्ध है, ये सूरज, चाँद , सितारे किसने बनाये हैं, सितारों से भरपूर यह आसमानी चादर किसने बनाई है, यह रंग-बिरंगे फूल, यह चहचहाती चिड़ियाँ , यह झरनों का रंग, यह वर्ष से ढंके पहाड़, ये हरे-भरे जंगल, ये खूबसूरत बच्चे, यह मखलूक किसने बनाया है, कौन है वह खूबसूरत परी जिसने इन्हें संजोया, कौन है वह कुशल कारीगर जिसने इन्हें बनाया है और जो इनका मालिक है ? जब यह स्वयं इतने खूबसूरत हैं, मनमोहक हैं, तो इनको बनाने वाला खुद कैसा होगा ? यहाँ से सोच-विचार करते ' हैरत ' (आश्चर्य) के मुक़ाम में आ जाता है। जहाँ बुद्धि शान्त हो जाती है और तर्क-वितर्क करना बन्द कर देती है।

हैरत दो तरह की होती है। एक **हैरत महमूद** (अच्छे किस्म की हैरत) जिसमें हुज़ूरी हर समय रहती है और एक ऐसी हालत आनन्द की पैदा हो जाती है जो बयान में नहीं आ सकती। यहीं पर आदमी आश्चर्यचकित हो जाता है और कह उठता है - " हैरत, हैरत, हैरत " , "वाह गुरु, वाह गुरु, वाह गुरु " । यही विराट रूप का दर्शन है। दुनियाँ के सब काम बिना थोड़ा सा ख्याल किये भी होते जाते हैं और उनमें जरा सी भी परेशानी नहीं होती। ज़्यादातर समय प्रेमावेश में गुज़रता है, इसमें अपने आप से बेखबर नहीं होता, सब चीज़ पर काबू रहता है।

दूसरी हैरत मजमूम (बुरी किस्म की हैरत) होती है। इसमें और सब बातें तो हैरत महमूद की तरह होती हैं लेकिन किसी तरह का आनन्द और हर हालत की अपने को खबर नहीं होती। ऐसे लोगों को मज्जूव (खिंचा हुआ) कहते हैं। दुनियाँ का कोई भी काम इसमें अक्लमंदी के साथ नहीं होता। लोग ऐसे आदमी को पागल समझने लगते हैं।

इससे अगली हालत जब आती है उसे '**हकीकत**' कहते हैं। जो आत्मा द्वारा जाना जाए, जिसका अनुभव आत्मा से हो, जहाँ इन्द्रियां, मन और बुद्धि सब पीछे रह जाएँ। वहाँ केवल एक शुद्ध आत्मा रहती है और वही अपने प्रीतम का साक्षात्कार करती है। उस परमात्मा के सर्वत्र और सब में रमे होने होने का उसे साफ़-साफ़ भास होने लगता है। सारा विश्व मेरा ही बन्धु है - ऐसी भावना उसमें जाग जाती है। संसार के किसी भी कोने में हुए सभी अवतार, पैगम्बर, देवदूत, उसे एक ही बात कहते हुए सुनाई देते हैं। यही हकीकत का जानना है। इसी को आत्मदर्शन कहते हैं। इस स्थान पर आकर भेद-भाव, मज़हब सब नीचे रह जाते हैं।

आधुनिक युग में **परमसन्त महात्मा रामचन्द्र जी महाराज (फतेहगढ़ निवासी)** भी ऐसे ही विशाल हृदय के महापुरुष हुए हैं जिन्होंने मुस्लिम सूफी सन्तों की वंश परम्परा को नज़दीक से देखा और उसे अपनाया। इनका अध्ययन करने पर उन्होंने यह जाना कि भले ही यह मत हज़रत मोहम्मद से चला हो लेकिन इसमें और हिन्दुओं के वेदान्त में कोई अन्तर नहीं है। फ़र्क है तो सिर्फ़ शरीयत में। शरीयत से हकीकत या वास्तविकता थोड़े ही बदल जाती है। ईश्वर तो वही है जो सबका एक है। अतः उन्होंने एक ऐसी नवीन और अद्भुत प्रणाली को जन्म दिया जसमें इस्लाम के सूफी मत और हिन्दुओं के वेदान्त का समन्वय है - और वह है आपका सत्संग (रामाश्रम सत्संग)। जहाँ तक कर्मकाण्ड का ताल्लुक है, जहाँ तक शरीयत है, मन का साधना (तरीकत) और बुद्धि की शुद्धि (मारफत) का सम्बन्ध है, हमारा तरीका सनातन है। हमारे वही तरीके हैं जिनपर पुराने ऋषि-मुनि चलते आये हैं और जिनका हिन्दू शास्त्रों में वर्णन है। और जहाँ तक आत्म दर्शन का ताल्लुक है हमारी परम्परा सूफी है। हम उन सब विगत मुस्लिम और हिन्दू महापुरुषों से दुआ करते हैं, और उनसे हमें सदा मदद मिलती है, जो इस वंश परम्परा में हुए हैं। सब अवतार या पैगम्बर चाहे वे किसी भी देश में हुए हों और चाहे वे किसी भी मज़हब से सम्बन्ध रखते हों - चाहे वे राम हों या कृष्ण, मोहम्मद हों या ईसा, या और कोई हमारे लिए सब एक समान आदरणीय हैं। भले ही उन लोगों ने अलग-अलग रास्ते ईश्वर प्राप्ति के लिए बनाये हों, पर वे सभी रास्ते उसी लक्ष्य पर पहुँचते हैं जो सबका एक है।

जहाँ तक सदाचार का सम्बन्ध है, सभी कहते हैं - सच बोलो, नेक काम करो, नेकी पर चलो, बुराई से बचो, दीं-दुखियों की सहायता करो, सबमें एक ईश्वर का रूप देखो।

कुरान शरीफ में लिखा है - ईश्वर श्रष्टि का कर्ता है, वह एक है, उसके सिवा दूसरा कोई परमात्मा नहीं, वही नित्य और सर्वशक्तिमान है, पथ प्रदर्शक तथा संरक्षक भी वही है। वह इष्ट स्रोत और साक्षी है। वह स्वतः पूर्ण है। वह सबमें रमा हुआ है, सर्वज्ञ है। न उसका आदि है न अन्त। वह सर्वोच्च सत्ता है जो अप्रत्यक्ष भी प्रत्यक्ष है। विश्व का कण-कण उसी का प्रदर्शक है। वह सर्वोत्कृष्ट और समृद्धिवान है, विजेता और महान है। संसार का सबसे बड़ा हितकारी और श्रेष्ठ न्यायकारी भी वही है। सारे पदार्थ उसी से उत्पन्न हुए हैं और अन्त में उसी में समा जायेंगे। जो उसमें विश्वास करते हैं और सन्मार्ग पर चलते हैं वे आनन्द का उपभोग करते हैं। इनमें से कोई भी ऐसी बात नहीं है जो हिन्दू धर्म ग्रंथों में न हो। भेद-भाव की बात ही कौन सी है ?

अगर कोई चाहे कि समुन्द्र को लोटे में भर लूँ तो यह नामुमकिन बात है। वह अपार और अथाह जल भला लोटे में कैसे आ सकता है? फिर वह परमात्मा जो सारी सृष्टि का रचयिता है, सम्पूर्ण रूप से कैसे जाना जा सकता है ? उसका न आदि है और न अन्त। अगर कोई चींटी किसी हाथी को देखने चले तो उसे सारा कैसे जान सकती है ? कोई पैर पर रेंग कर यह मालूम कर लेगी कि हाथी एक खम्बे की तरह है, कोई कान पर चढ़ जाये तो उसे सूप की तरह बताएगी। इतने बड़ा हाथी का सम्पूर्ण ज्ञान एक चींटी को नहीं हो सकता। इसी तरह मनुष्य को परमात्मा का पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता। जिस महापुरुष ने जितना अनुभव किया उतना उसने बता दिया। अपने-अपने अनुभव के लिए सबने अलग-अलग रास्ते अपनाये, मगर लक्ष्य सबका एक ही रहा।

हमारे यहाँ का रास्ता सबसे सरल और सीधा है। यह प्रेम का रास्ता है। सब अवतार और पैगम्बर हमें प्यारे हैं। लेकिन रास्ता हमारा वह है जो हमारे वंश के महापुरुषों ने दिखाया है। सबकी नसीहत अच्छी है। सबमें से अच्छाई को छांट लो। कोई चीज़ तुम्हें पसंद नहीं है तो उसकी बुराई मत करो।

हमारा मत विशाल हृदयता सिखाता है । घर वालों से प्रेम करो, पड़ोसियों से प्रेम करो, देशवासियों से प्रेम करो, दुश्मन से भी प्रेम करो और जीव -मात्र, वनस्पति, स्थावर, सबसे प्रेम करो। सबमें एक ही परमेश्वर समाया हुआ है। वही हमारा सच्चा गुरु है। हम गुरु की पूजा को ही

प्रधानता देते हैं। गुरु और ईश्वर को दो नहीं मानते। पहले गुरु को ईश्वर रूप समझो और अपने आपको उसमें लय कर दो। जब आदि पुरुष परमात्मा के दर्शन हो जाएँ जो उस गुरु में निवास करता है, तो फिर ईश्वर ही गुरु नज़र आने लगेगा। पहले सगुण ईश्वर की उपासना गुरु-रूप में की जाती है और उसके द्वारा गुरु में लय हो जाने पर ईश्वर दर्शन निर्गुण रूप में होते हैं।

0000000

साधना के अनुभव

१। परमात्मा एक है। वही सबका आधार है, उसका कोई आधार नहीं है।

२। हर चीज़ की दो शक्तें हैं - असल और नकला। परमात्मा के भी दो रूप हैं - साकार और निराकार।

साकार का अर्थ है वह कर्ता- धर्ता तमाम दुनियाँ का है और भक्तों का इष्ट है। दूसरा निराकार यानी निर्गुण है। यह जानियों का इष्ट है।

३। असल (साकार) को ही प्रकृति कहते हैं। यह असल के साथ रहती है लेकिन जब असल से अलग होकर प्रकट होती है तब प्रकृति कहलाती है। जैसे किसी चीज़ की परछाया जब असल से अलहदा होती जाती है तो साया कहलाती है। साया में अपना आधार नहीं होता। उसका अस्तित्व स्वामी के आधार पर है।

स्वामी से शक्ति पाकर वह तमाम संसार की रचना करती है। संसार पर पर्दा डाले रखती है और असल से अलग रहती है। शायद ही कोई बिरला उसकी माया से बच जाये नहीं तो सभी भरमाये रहते हैं। इसे ही प्रकृति कहते हैं। मुसलमान सूफी इसे शैतान कहते हैं।

४। जब यह प्रकृति अपने असल से अलग होकर उसकी शक्ति से रचना करती है और पालन-पोषण और संहार करती है तो उसे ही संसार कहते हैं। और जब यह अपने असल में समा जाती है तो संसार भी जाता रहता है। इसी को महाप्रलय कहते हैं। यह तीन शक्तियों में विभाजित है -

क पैदा करने वाली शक्ति ' ब्रह्मा ' यानी रजोगुण

ख पालन पोषण करने वाली शक्ति यानी ' विष्णु ', और

ग संहार करने वाली शक्ति ' शिव ' यानी तम

५। इन्हीं शक्तियों से अनेक शक्तियाँ पैदा हो गयीं जिनसे संसार का कार्य चलता रहता है। इन्हीं शक्तियों को हिन्दुओं ने देवी-देवता के रूप में स्वीकार कर लिया। मुसलमान इन्हें 'फरिश्ता' कहते हैं।

६। जो असल यानी परमात्मा की पूजा करते हैं वही ज्ञानी, ईश्वर भक्त और दीनदार सच्चे साधक माने जाते हैं।

७। जो प्रकृति की पूजा करते हैं और उसी को असल मानते हैं उन्हें मूर्तिपूजक कहते हैं। मुसलमान इन्हें 'काफिर' कहते हैं। जो किसी वचन को लेकर उसी को असल समझकर पूजता है वह मूर्तिपूजक नहीं है पर मन्ज़िल से दूर है।

८। जो असल को प्रकृति के रूप में पूजता है वह धोखे में है और वही मन्ज़िल से भटका हुआ है।

९। प्रकृति यानी देवताओं को पूजने वालों की दुनियावी इच्छायें पूर्ण होती हैं। असल को पूजने वालों की परमात्मा से समीपता होती है यानी मोक्ष, निजात या आज़ादी मिलती है।

१०। असल के उपासक कम हैं। अधिक संख्या में लोग देवी-देवताओं की ही उपासना भिन्न-भिन्न रूप में करते हैं।

११। हर धर्म का लक्ष्य एक है - यानी प्रकृति से हटकर असल की ओर जाना।

१२। परमात्मा की शक्ति को प्रकृति कहते हैं। जीव की शक्ति या मेरे-तेरेपन को माया कहते हैं।

१३। तीन देश हैं -

मायादेश - यहाँ स्थूल प्रकृति का राज्य है, यानी स्वार्थ, में पन ओर इसी वजह से यह दुःख ओर क्लेश का स्थान है। कुछ समय बाद वह अपने आधार में लय हो जाता है जिसे संसार कहते हैं।

काल देश - इसके दो हिस्से हैं। एक निचला हिस्सा माया देश से मिला हुआ है। उसमें भी स्थूल माया का राज्य है लेकिन कमी के साथ। यहाँ कुछ कम मात्रा में सुख-दुःख मौजूद हैं। इसका ठहराव मायादेश से कुछ ज़्यादा है। इसी को देवलोक कहते हैं। जब यह अपने असल यानी दयाल देश में लय हो जाता है तो महाप्रलय कहते हैं। दूसरा हिस्सा जो दयाल देश से मिलता हुआ है यहाँ पर सूक्ष्म माया है। यहाँ पर सुख-दुःख हैं ज़रूर पर बहुत कम।

दयाल देश - यहाँ पर माया का या प्रकृति का कोई हस्तक्षेप नहीं है। यह सबका आधार है, इसका कोई भी आधार नहीं है। यहाँ आत्मा का निवास है। इसका कभी नाश नहीं होता। इस देश में प्रवेश पाने का नाम ही मोक्ष या मुक्ति है।

इन तीनों देशों के छः-छः उपभाग हैं। इस तरह से अठारह हिस्से हुए। इन सबके ऊपर असली शक्ति है जो सबका आधार है।

जितनी शक्तियाँ ब्रह्माण्ड में कार्य कर रही हैं उतनी ही शक्तियाँ पिण्ड (मानव शरीर) में भी कार्य कर रही हैं। अन्तर केवल दोनों की मात्रा व गुण में है। ब्रह्माण्ड ओर पारब्रह्म की शक्तियों ओर विभाजन को पूर्णरूप से नहीं जाना जा सकता। जिस तरह श्रष्टि के तीन भाग ओर फिर हर एक के छः - छः भाग हैं उसी तरह पिण्ड (मानव शरीर) के तीन भाग और अठारह उप-भाग हैं। आत्मा का स्थान सबसे ऊँचा है।

जिस तरह आदिशक्ति अपने स्थान पर बैठी हुई तमाम श्रष्टि का पालन-पोषण करती है उसी तरह आत्मा अपने स्थान पर बैठी हुई सारे शरीर की देख भाल करती है।

इसी शक्ति और आत्मा में अंश और अंशी का भेद है। जिस तरह पानी की बूँद की चाह होती है कि वह अपने आपको समुद्र में पहुँचा दे, इस तरह हरेक आत्मा की यह ख्वाहिश रहती है कि वह अपने आपको निज घर में पहुँचा दे।

जीवात्मा जब तक अपने निजधाम में नहीं पहुँच जाती उसे स्थायी सुख, चैन और शान्ति नहीं मिलती। इसीलिए हर मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने घर की सुध ले।

इसका तरीका केवल यह है कि वह अपनी सुरत को साँसारिक विषय वासनाओं से हटा कर आत्मा में लगाए। इसका तरीका कोई सतगुरु ही बता सकते हैं। जब तक तरीका मालूम करके अभ्यास नहीं करेगा उस घर तक पहुँचना नहीं हो सकता। विद्या पढ़ लेने और वाद-विवाद करने से मंज़िल पर नहीं पहुँच सकते।

दुःख की जड़ इच्छाओं में है। इच्छाएं जितनी अधिक होंगी दुःख भी उतना ही अधिक होगा। इसलिए इच्छाओं को कम करो।

सम्बन्ध केवल उन्हीं चीज़ों से रखो जिनके बिना जीवित नहीं रह सकते। मन और स्त्री का रूप एक समान है। दोनों ही चंचल हैं। साँसारिक वैभव की चाह दोनों को रहती है। अतः इस पर नियंत्रण होना चाहिए। दुनियाँ में हर व्यक्ति अपने आपको अच्छा समझता है और दूसरों को बुरा। अतः दोष अपने देखो और गुण दूसरों के देखो।

दुनियाँ में सभी मन मत हैं। वह गुरु इसलिए करते हैं कि दूसरे लोग उनके विचारों की, चाहे वो अच्छे हों या बुरे, पुष्टि करें जिससे वह निर्भय होकर अपने विचारों के अनुसार चलें। अगर उनके विचारों को गलत कहा जाता है तो वह कहने वाले से नाता तोड़ लेते हैं।

लालची गुरु इस विचार से कि शिष्य उनसे नाता न तोड़ ले उसकी इच्छा के मुताबिक उपदेश देते हैं। वे शिष्यों के मन को मोटा बनाते हैं और दुनियाँ में फंसाये रखते हैं ।

सच्चे गुरु बेगरज शिष्य के दोष बताकर उसे परमार्थ के मार्ग में आगे बढ़ने में मदद करते हैं ।

दुनियाँ में शहद की मक्खी की तरह रहो। वह फूलों का रूप नहीं बिगाड़ती मगर रस चूस लेती है। गाफिलों से सचेत और होशियारी में जाग्रत रहकर बुद्धिमान व्यक्ति उन्नति कर जाता है ।

दिल का सुधार करो। उसे बहकने मत दो। शत्रु के साथ कभी अभद्र व्यवहार मत करो । दूसरों की बुराई और कमी को कभी मत देखो। ज्ञानवान केवल यह देखता है कि मेरा अपना काम पूरा हो। मैंने उसे अधूरा तो नहीं छोड़ दिया। जब तक बुरे कर्म का फल नहीं मिलता अज्ञानी उसे मीठा समझता है, लेकिन जब वह पक जाता है और फल देने लगता है तब कटुता असहनीय हो जाती है।

युद्ध में हजारों आदमियों को पराजित करके भी व्यक्ति सूरमा नहीं कहलाता। अपने आप पर विजय पाने वाला व्यक्ति सच्चा सुरमा है।

यह कभी मत सोचो कि पाप का फल हमको मिलेगा। जैसे एक-एक बूँद से घड़ा भर जाता है वैसे ही थोड़े-थोड़े पाप से आदमी बड़ा पापी बन जाता है। दूसरे को उपदेश देने से खुद सुनना अधिक श्रेयस्कर है। दूसरों को प्रभावित करने से खुद को जीत लेना कठिन है।

जो धर्म को छोड़ देता है, झूठ बोलता है और परलोक का मजाक उडाता है वह हर तरह की बुराई कर सकता है। तुमसे जो घृणा करते हैं उनसे कभी घृणा मत करो। जो भलाई के बदले बुराई देते हैं वे पशुवृत्ति के हैं। जो बुराई का जबाब बुराई से और भलाई का भलाई से देते हैं वे आदमी हैं और जो बुराई का उत्तर भलाई से देते हैं वे देवता हैं। जो इन सब से परे हैं और भलाई उनकी ज़िन्दगी का अंग बन गयी है, जो स्वप्न में भी किसी की बुराई नहीं देख सकते वे साधु हैं।

00000000

विद्या का परम लक्ष्य

जब हम पाठशाला में पढ़ते थे तब पहले हमें अक्षर-ज्ञान कराया गया, अ, आ, इ, ई, आदि अक्षर पढ़ाये गए। जब अक्षर-ज्ञान हो गया तब मात्राएँ सिखाई गयीं और जब मात्राओं की समझ आ गयी तब अक्षरों का मिलाना सिखाया गया। जब हम यह भी सीख गए तब शब्दों और वाक्यों को पढ़ने लगे। इनके अभ्यास और शिक्षा के माध्यम से हम पुस्तकों के पृष्ठ के पृष्ठ पढ़ते रहे किन्तु इसके बाद भी हम विद्वान कहलाने योग्य नहीं हुए। इसका कारण यह था कि हमें इन शब्दों का अर्थ और भावार्थ का ज्ञान नहीं था। धीरे-धीरे हमें इनका भी ज्ञान होने लगा। आयु बढ़ती गयी, बुद्धि विकसित होती गयी और इस बात की समझ आने लगी कि विद्या क्या है, और उसको पढ़ने का क्या लाभ है? यह समझ में आते ही हमने पुस्तकों का अध्ययन करके अपना ज्ञान बढ़ाने का प्रयत्न किया तब हमें उनका कुछ ज्ञान हुआ तथा हम उनकी व्याख्या करने लगे। अब दुनिया हमको विद्वान कहती है और जो कुछ हम कहते हैं उसको आदर की दृष्टि से देखती है। यदि हमने विद्या की प्रारम्भिक कठिनाइयों का तिरस्कार किया होता, या अपने शिक्षकों के कहने को उल जलूल समझ कर बेपरवाही की होती तो आज हमको पढ़ने-लिखने और पुस्तकों के अध्ययन का लाभ न होता। प्रारम्भ के अक्षर विद्या नहीं थे किन्तु विद्या प्राप्ति के साधन थे। इसी प्रकार ये पुस्तकें भी स्वयं विद्या नहीं हैं, साधन अवश्य हैं। सब लक्ष्य भी नहीं हैं। लक्ष्य और साधन में अन्तर होता है। वे एक से नहीं होते। जो लोग उनकी समझ नहीं रखते वे सच्चे विद्वान भी नहीं होते। विद्या कोई और वस्तु है और साधन तथा ज्ञान कुछ और। जिस प्रकार बढ़ई हाथ में बसूला लेकर लकड़ी को काटता है और उससे सुन्दर मूर्ति गढ़ कर निकालता है वैसे ही इन साधनों से विद्या प्राप्ति में सुविधा रहती है।

असली विद्या कहाँ है ? वह और कहीं नहीं है, हमारे हृदय में है। हमारा हृदय ही विद्या, ज्ञान तथा गुणों का भण्डार है। विद्या कहीं और से नहीं आती बल्कि वह हममें मौजूद है। बाहरी सामान केवल उसके प्रसार के साधन हैं। जिस प्रकार किसी शिल्पी का हथौड़ा चोट मारकर पत्थर से मूर्ति निकालता है उसी प्रकार अध्ययन, पाठन, अभ्यास और स्वाध्याय से विद्या हमारे भीतर से निकलती है। किसी विद्यार्थी को कोई पढ़ायेगा क्या ? केवल उसकी आंतरिक शक्ति को जाग्रत करके उसको क्रमबद्ध करने का अभ्यास किया जाता है। इस काम के लिए साधन जुटाए जाते हैं, शिक्षा दी जाती है जिससे वह अपने हृदय के भीतर से विद्या के छिपे हुए भण्डार को बाहर निकाले। यदि उसको अपने हृदय के भीतर घुसने का भेद मालूम हो

गया तो वह विद्वान बन जायेगा। यदि इस भेद से वंचित रह गया तो विद्वान की बजाय नकलची और भाँड़ कहलायेगा। आजकल हममें से इस प्रकार के पढ़े लिखे भाँड़ बहुत हैं जिनको विद्या तो आती नहीं परन्तु सुनी सुनाई और पढ़ी -पढ़ाई बातों को दोहराते रहते हैं। हर्बर्ट स्पेंसर, थैंकले आदि महान विद्वानों के नाम उनके व्याख्यानों में सुनने को मिलेंगे। किन्तु यह न होगा कि वे अपनी भी कुछ कहें। यह माना कि अमुक विद्वानों की अमुक राय है किन्तु तुमने अपनी ओर से क्या सोचा ? तुम किस निष्कर्ष पर पहुँचे हो ? इसका उत्तर वे कुछ नहीं देंगे। यह लोग सदा दूसरों की उगलन अपने मुँह में लेकर चबाते रहते हैं। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं आता। यही कारण है कि इनको संसार में शान्ति नहीं मिलती। इन्होंने न तो शान्ति का सिद्धांत अपनाया है और न परमात्मा की इच्छा के अनुकूल रहने का और न इनको उस सिद्धांत का पता।

संसार के लोग चाहे मान लें किन्तु बुद्धिमान मनुष्य इस बात को नहीं मानेंगे। असली विद्या वह है जो मनुष्य का मूल तत्व अथवा यथार्थ हो और उसके अन्तर के अन्तर से स्रोत की तरह उस प्रकार निकलती हो जैसे गंगोत्री का जल निरन्तर प्रवाहित होता रहता है। पुस्तकें क्या कहती हैं यह प्रश्न नहीं है। पुस्तकें मनुष्य की बनाई हुई हैं और मनुष्य के विचारों तथा खोजों का चित्रण उनमें मिलता है। वास्तविकता नहीं है। मनुष्य की गढ़त पुस्तकों से नहीं होती। किन्तु आजकल के पढ़े-लिखे लोग ऐसे बनना चाहते हैं मानों उनको पुस्तकों ने गढ़ा हो जो विद्या आत्मा की मुक्ति तथा आज़ादी की ओर ले जाती है वही असली विद्या है। जो विद्या बंधन में जकड़ती है और मनुष्य को दुनिया और दुनिया की चीज़ों का गुलाम बनाती है वह असली विद्या नहीं है। वह कोई ओर वस्तु है। दुनिया में अशान्ति फैली हुई है, शांति का कहीं नाम नहीं, ओर इस पर भी यह गर्व है कि विद्या और कला का डंका रहा है। हममें से कितने ऐसे मनुष्य हैं जो आनन्द का जीवन व्यतीत कर रहे हैं ? कितने मनुष्य ऐसे हैं जिनमें चैतन्य शक्ति के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं ? कितने मनुष्य ऐसे हैं जो अपने व्यक्तित्व का प्रभाव दूसरों में प्रवेश कर सकते हैं ? हर जगह ऐसे व्यक्तियों का अभाव है फिर भी यह दावा है कि हम विद्वान हैं।

यदि हमसे पूछा जाय तो हम यह कहेंगे कि जो विद्या हमको धोबी के कुत्ते की तरह घर-घाट का नहीं रखती उसको ले जाकर समुद्र में डुबो दो। जो विद्या हमको जूठन खाने वाला बनाती है उसका मिट जाना ही अच्छा है। जो विद्या हमको संसार में किसी और का मोहताज और आश्रित कर देती है उसको दियासलाई लगा कर जला दो क्योंकि वह जब नहीं रहेगी तो

हमारी दुर्दशा नहीं होगी । विद्या के विषय में यह पहले ही कहा जा चुका है कि विद्या केवल वास्तविकता और यथार्थ का नाम है, जिसे सूफियों में 'जात' कहते हैं । विद्या वह शक्ति है जिससे संसार की सारी शक्तियाँ प्रभावित होती हैं। विद्या वह ज्योति है जिसकी सहायता से माया के अन्धकारमय आवरण स्वयं हट जाते हैं । विद्या साहस और शौर्य है जिसके सामने पहाड़ पानी बन कर बह जाता है । क्या आपको आजकल के विद्वानों में ये गुण मिलते हैं? यदि नहीं तो जो कुछ पढ़ा लिखा जा रहा है वह विद्या नहीं अविद्या है ।

सारी विद्याओं, कलाओं, आदि का सिद्धान्त यह है कि मनुष्य के मस्तिष्क में यह बात बैठ जाय कि मैं क्या हूँ, मेरी असलियत क्या है, और मुझमें क्या गुण हैं ? लोग हर वस्तु की कदर और कीमत जानते किन्तु अपनी हैसियत नहीं पहचानते। उनसे कहो कि तुम निपट अनाड़ी और परले सिरे के मूर्ख हो ।

जिसको अपनी मूल सत्ता का ज्ञान है वह सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर होता है । जिसको अपनी आत्मा का ज्ञान है वह प्रत्येक वस्तु पर अपना प्रभाव डालता है। किसी से द्वैत भाव नहीं रखता। राम को अपनी आत्मा का ज्ञान था । दुनिया की सबसे बड़ी ताकत (रावण) को केवल बन्दरों और रीछों के द्वारा विजय कर लिया और दुनिया को दिखा दिया कि शक्तिशाली मनुष्य किस प्रकार छोटी से छोटी वस्तु को अपनी शक्ति देकर बड़ी शक्ति को नीचा दिखा सकते हैं। भगीरथ को अपने मूल तत्व का ज्ञान था। आकाश से गंगा को विवश किया कि भारतवर्ष के मैदानों को जलमग्न कर दे । हिमालय पर्वत ने अपनी कन्दराओं में गंगा को छिपाने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु आत्म-ज्ञानी भगीरथ ने हिमालय के हृदय फोड़ कर उलटी बहने वाली गंगा को सीधा बहाया है ।

आत्मज्ञानी ही सच्चा विद्वान, सच्चा पंडित और सच्चा शक्तिशाली है जिसकी शक्ति के सामने संसार को आदरपूर्वक नतमस्तक होना पड़ता है। बुद्ध भगवान क्या थे ? एक मामूली हैसियत के साधु लगते थे किन्तु उन्होंने संसार भर को अपने प्रभाव में ले लिया । शंकराचार्य की क्या हैसियत थी ? देखने में एक दुर्बल विद्यार्थी थे जिनके पास कोई सामान न था । देखते-देखते अपनी महानता का डंका बजा गए। यदि इतिहास को पढ़ो तो ज्ञात होगा कि इनका प्रभाव केवल भारतवर्ष तक सीमित नहीं था । अन्य देशों और जातियों का साहित्य पढ़ने से ज्ञात होगा कि बुद्ध ने २५ वर्ष के प्रचार में समस्त एशिया को घेर लिया। शंकर ने ३० वर्ष की आयु में फ़ारस इत्यादि की महान शक्तियों पर अपना प्रभाव जमा लिया था। यहाँ तक कि ज़रदश्तनवी को अपनी धार्मिक कृतियों में उनकी महानता स्वीकार करनी पड़ी है और वह

अपनी पुस्तकों में उनको 'चकरखाचा' का नाम देता है जो शंकराचार्य का अपभ्रंश है । आश्चर्य की बात है कि शंकर ने सात वर्ष की आयु में उपनिषदों की व्याख्या लिखी। जो कुछ करना था २०-२२ वर्ष की अवधि में कर लिया और अपने जीवन के मिशन को पूरा करके ३० वर्ष की आयु में संसार से विदा ली। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि केवल कुछ ही वर्षों के अध्ययन में गौतम बुद्ध के विचार सारे संसार में फैल गए ? यह लोग वास्तव में मनुष्य थे, विद्वान थे और आत्मज्ञानी थे। यह अपनी आत्मा के बल को जानते थे। आप इनकी विद्या को विद्या कह सकते हैं। अन्य लोगों की विद्या, विद्या नहीं अविद्या है जिसको सूफी लोग 'जहल' कहते हैं। कोल्हू के बैल की तरह दिन भर चक्कर लगाते रहते हैं और अंत में जहाँ थे वहीं पड़े रहते हैं। न इनके काम का किसी पर प्रभाव पड़ता है और न उनकी दीन दुनिया में इज़्जत होती है। अब यह प्रत्यक्ष है कि यह झूठे हैं, जूठन खाने वाले और दूसरों का चबाया हुआ ग्रास चबाने वाले हैं। स्वयं दुःखी हैं और दूसरों को दुःखी करते हैं। स्वयं अज्ञानी हैं और दूसरों को अज्ञान के अन्धेरे कुँए में ढकेलते रहते हैं। इनको यह भी ज्ञात नहीं कि हमारे कर्मों का फल क्या होगा ? उन्हें अपने ऊपर भरोसा नहीं। अपने पैरों पर खड़ा होने की शक्ति नहीं। दूसरा उनको रोटी दें तो खायें। दूसरा उनको कपड़े पहनाये तो पहनें। खूँटे से बंधे हुए पशु की भाँति दूसरों के लाये हुए चारे को चबाते हैं और बार-बार उसी की जुगाली करते रहते हैं। यह लोग वेद के मंत्रों की डींग मारते हुए फुटबॉल की तरह ठोकर खाकर इधर से उधर लुढ़कते हैं। यह उपनिषदों का हवाला देते हुए थोड़ी-सी परीक्षा के समय ऐसे फिसल पड़ते हैं कि मुँह के बल गिर जाते हैं। और दुनिया उनपर हंसती है। यदि वेदों और उपनिषदों की शिक्षा का यह परिणाम है तो उनको दूर से प्रणाम करना चाहिए, किन्तु इसमें वेदों और उपनिषदों का दोष नहीं है। दोष लोगों की ओछी दृष्टि और त्रुटियों का है। जब तक वेदों की वाणी मनुष्य के जीवन में न उतर आये, वह वेद कब हैं ? जब तक उपनिषदों की तरह मनुष्य की रहनी-सहनी न बन जाए, उनके मंत्र उसके हृदय मन्दिर में न गूँजें, वह उपनिषद कहाँ हैं ?

साधारण विद्वानों का जो हाल यहाँ है वह आपने देख लिया। उनकी विद्या में जान और ताकत नहीं है। उनका पग मृत्यु और शक्तिहीनता की ओर अग्रसर हो रहा है। क्या अब भी आपको ऐसी विद्या और ऐसे विद्वानों पर विश्वास करना चाहिए ? दूसरी और दृष्टि डालकर देखें तो जो ब्रह्मज्ञानी कहलाते हैं वे रोटियों को दर-दर मारे फिरते हैं, न कोई उनकी सुनता है और न उनमें शक्ति है कि वे अपने ब्रह्मज्ञान का प्रभाव दूसरों के हृदय पर दाल सकें।

जो शिक्षा मनुष्य को परमात्मा तथा उसके मूलतत्व का ज्ञान कराने वाली थी वह आजकल इन वाचक ज्ञानियों के कारण बदनाम हो रही है। वास्तविक बात यह है वे लोग उसके तत्व और सार को नहीं समझते और न दूसरों को समझा सकते हैं। न यह आपने हृदय मन्दिर में घुसकर विद्या के असली रूप को पहिचानने की योग्यता रखते हैं। उनमें अनुभव नहीं है। यह भवसागर की लहरों में संघर्ष के थपेड़े खा रहे हैं, न आप तर सकते हैं न औरों को तार सकते हैं।

यदि दीपक के पास बैठने से दिखाई दे जाता है, यदि अमृत पान करने से विष का डर नहीं रहता तो हम कैसे मान लें कि ब्रह्मज्ञान को पाकर भी मनुष्य प्रेत बैताल को पूजने वाला या ऐसी ही अन्य बेहूदा बातों को मानने वाला हो सकता है। किन्तु यह स्पष्ट है कि यह बाहर से गेरुए वस्त्र पहिनने वाले न तो वेदान्ती हैं, न ब्रह्मज्ञानी। इनमें से किसी को शंकराचार्य की टेक है, कोई रामानुज के नाम की लकीर पीटता है। इनमें से आत्मनिष्ठ और ब्रह्मनिष्ठ कोई भी नहीं है।

मनुष्य में सच्चाई और असलियत होनी चाहिए। सत्यप्रियता मनुष्य का गुण है। केवल इस बात पर विश्वास कर लेना कि यह शंकर या रामानुज का मत है, त्रुटि है। वह तो जो कहना था, कह गए। आपका भी कुछ अनुभव है या यों ही अनाप शनाप सुनाते रहते हो ? आपने स्वयं क्या साक्षात्कार किया है ? शंकर और रामानुज का समय तो गया। वह और समय था, अब समय उससे भिन्न है। ज़माना बदल गया, लोगों के विचार बदल गए। समयानुसार बात क्यों नहीं करते, क्यों घट-पट के दृष्टांत देकर खट-पट में पड़े हो ? वेदान्त पुस्तकों में नहीं है, वेदान्त तो तुम्हारा मूल तत्व है। जो वेद का अन्त है वही आत्मा है। जो आत्मा है वही वेद का अन्त है। यह वेदान्त की वास्तविकता और सार है।

0000000

नाम की महिमा

हरी - हरी मायने हरने वाला । दुनियादार उसके मायने लेते हैं ' दुनिया के दुःख को हरने वाला ' लेकिन भक्त इसके मायने लेते हैं ' हमारे और ईश्वर के बीच में जो चीज़ें हैं उनको हरने वाला। परमात्मा की कशिश यानी प्यार सबको अपनी तरफ खींचे हुए है। लेकिन जब कोई चीज़ बीच में आ जाती है तो खिंचाव में कमी आ जाती है। परमात्मा का प्रेम सबको खींचे हुए है और जीव में भी परमात्मा का प्रेम कुदरती तौर पर मौजूद है। आदि में दोनों का मिलन था, दोनों एक थे। जब किसी भाँति से संसारी वासनार्ये बीच में आ जाती हैं तो दोनों में अलहदगी हो जाती है और जब वह दुनियावी चीज़ें दूर हो जाती हैं तो दोनों एक हो जाते हैं। इसलिए जीव और ईश्वर के मिलन के लिए पहली चीज़ यही ज़रूरी है कि दुनियावी सभी चीज़ों का हरण कर लिया जाय। परमात्मा की वह सिफत तो दुनियावी चीज़ों का हरण करके परमात्मा के प्रेम का अधिकारी बनाती है 'हरी' कहलाती है ।

कृष्ण - कृष्ण मायने 'खींचने वाला', अपने में मिला लेने वाला । जब जीव के ऊपर से दुनियावी चीज़ों का पर्दा हट जाता है तब परमात्मा की प्रेम वाली सिफत, खींचने वाली शक्ति जीव को खींच कर अपने में मिला लेती है और दोनों मिलकर एक हो जाते हैं ।

राम - राम मायने 'रमा हुआ ' आराम देने वाला, आनन्द देने वाला। जब जीव ईश्वर में मिलकर उसमें समा जाता है तो वह आनन्द स्वरूप हो जाता है।

उपरोक्त तीनों नामों (हरी, कृष्ण, राम) के उच्चारण करने का मतलब यही है कि तीनों शक्तियों का जो हमारे अन्दर रहते हुए भी दबी पड़ी हैं, हमें बोध हो और वे जीव को सांसारिक आवरण से छुड़ाकर अपने में मिलाकर आनन्द रूप हो जायें।

ॐ - ॐ के मायने शास्त्रों में उस शक्ति से है जो चारों जगत की स्वामी हैं - पिण्ड, ब्रह्माण्ड, पारब्रह्म , और दयाल देश, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया। जिसमें इस आदि शक्ति के चारों गुण, हरण करने वाला, खींचने वाला, प्यार करने वाला और आनन्द देने वाला है, यह शब्द सब गुणों का समूह है। इस शब्द के अन्दर भी सभी शक्तियाँ मौजूद हैं। इसके उच्चारण करने का मतलब यही है कि हम अपने घट में महसूस करें, उसका ज्ञान हो और धीरे-धीरे उससे मिलकर एक हो जायें। यह परमात्मा से मिल जाने का महामंत्र है।

ऋषियों का कहना है कि ईश्वर सबसे परे है। इतना दूर जितना हम ख्याल भी नहीं कर सकते, इतना महान जितना हम अन्दाज़ा भी नहीं लगा सकते, इतना विशाल जो ख्याल में भी

नहीं आ सकता। इसकी इस महानता का, इस दूरी का, इस फैलाव का ख्याल करने से जीव घबरा जाता है। तमाम जगत, ब्रह्माण्ड परब्रह्म के परे वह है। सब चीज़ों को, सब वासनाओं को, सब इन्द्रिय भोगों को छोड़कर उसको पाना अत्यन्त कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव सा है। लेकिन संतों ने दया करके उसको बहुत ही सहज कर दिया है। वे कहते हैं कि वह सबसे परे है यह ठीक है, लेकिन वह सबसे नज़दीक भी है, इतना समीप है जितना मेहनत हमको दुनिया की चीज़ों के हासिल करने में लगती है उससे भी कम मेहनत से वह हासिल हो जाता है। मगर शर्त यह है कि उससे प्यार हो। उससे प्यार हमारी आत्मा में कुदरती तौर पर है जो सोया हुआ है मगर दुनिया की और चीज़ों में प्यार के रूप में जाहिर हो रहा है। संतों की सेवा में जाकर उसे जगाओ। जिस चीज़ को मन प्यार करता है उसे अपने पास खींच लेता है। जिस आदमी को हम प्यार करते हैं, चाहे वह जिस्मानियत (देह) के लिहाज़ से हज़ार मील की दूरी पर हो, लेकिन प्यार की वजह से हर समय हमारे दिल में मौजूद रहता है। जिससे मोहब्बत होती है उसका ध्यान करने से कभी कोई तकलीफ नहीं होती बल्कि आनन्द आता है। जिससे प्यार होता है उसके ऊपर कुर्बान (न्योछावर) करने में कितनी ही बड़ी चीज़ क्यों न हो आनन्द आता है, दुःख नहीं होता। इसलिए सबसे आसान रास्ता उस तक पहुंचने का यह है कि बजाय इसके कि यह ख्याल करो कि वह दूर है, यकीन करो कि वह तुम्हारे नज़दीक से नज़दीक है, उसका ध्यान करो। हर समय उसको याद रखो। सोचो, वह तुम्हारा हमेशा का साथी है और उसी के पास जाकर तुम्हें सच्चा आनन्द मिलेगा। यह सब दुनिया की चीज़ें हैं उसी ने तुम्हें दी हैं और थोड़े दिन के लिए हैं। उन थोड़े दिनों रहने वाली चीज़ों के लिए अपने प्रीतम को न भूलो। जो चीज़ें उसने दी हैं, उन्हें अपनी मत समझो। जब तक वे चीज़ें मौजूद हैं और उसने दे रखी हैं, उसकी सेवा में लगे रहो और जब वह वापिस मांगे, उसे खुशी से वापस कर दो। इस तरह अपने मन को अन्तर में उससे लगाए चलो। अपनी वृत्तियों को बाहर से हटाकर उसी में लगा दो। हर समय उसका ध्यान करो।

सब दुनियांवी चीज़ों का जो ज़ाहिरा (दिखावे का) सहारा है, छोड़कर उसी मालिक का सहारा लो, उसी का असली सहारा है। अब चीज़ों को देने वाला वही है, लेकिन बाहरी रूप दूसरा है जो धोखा है। जितना तुम दिल से उसके समीप होते जाओगे, इतना लम्बा -चौड़ा रास्ता मिनटों में तय होता जायेगा। वह हमेशा-हमेशा से तुम्हारे साथ रह रहा है, लेकिन और योनियों में तुम्हारे अखित्यार में नहीं था कि इस खुदी के परदे को हटाकर तुम उससे मिलकर एक हो जाओ। लेकिन इन्सानी ज़िन्दगी में यह मौक़ा उसने तुम्हें दिया है कि तुम अपनी खुदी मिटाकर

उससे मिलकर एक हो जाओ। यह कहना कि वह हमको इतने जन्मों में मिलेगा, व्यर्थ है। यह सब इस बात पर मुनहसिर (निर्भर) है कि तुम्हें उससे कितना प्रेम है और प्रेम करना तुम्हारे हाथ में है। अगर तुम सांसारिक वस्तुओं में अपना लगाव और ख्वाहिशात को अपने और उसके बीच से हटा दो तो इसी जन्म की बात क्या, इसी वक्त वह तुम्हें मिल सकता है। सब कुछ अपने प्रेम पर निर्भर है। ऊपरी तौर पर हम सब कुछ उसको देते हैं परन्तु वास्तव में देते कुछ नहीं। एक क्षण मात्र के लिए इधर दिया और उधर सब वापस ले लिया।

नाम की महिमा का कोई अंत नहीं। इसीलिए सभी संतों ने इसका गुण एक सुर में गाया है। नाम और नामी में कोई भी अंतर या भेद नहीं होता। सभी प्रकार के नाम नामी तक पहुँचने के लिए ही होते हैं। सभी प्रकार के नान नामी तक पहुँचने के लिए ही होते हैं और उसके जैसा हो जाने के लिए भी। नामी यानी ईश्वर तक पहुँचने के लिए यह एक सीढ़ी है। आध्यात्म में सभी कार्य उस सीढ़ी के एक डंडे के समान ही हैं, जैसे भजन पढ़ना, धर्म शास्त्रों का अध्ययन करना, ईश्वर की चर्चा करना, संतों का नाम लेना, इत्यादि। इसकी प्रशंसा जहाँ तक की जाये कम है। बहुत सोच-विचार करके जब हम किसी महापुरुष के पास जाते हैं और दीक्षा लेने का निश्चय करते हैं तो महापुरुष दीक्षा के समय सबसे पहला कार्य जो करता है वह नाम देने का ही है। जो नाम वह महापुरुष देता है उसमें उसकी बड़ी कमाई होती है। उसके लिए वह जीवन दान दिए होता है, महापुरुष या गुरु में कोई अन्तर नहीं होता। गुरु-दीक्षा के समय हमें उसी जाप को करने का आदेश मिलता है। ईश्वर और हमारे बीच गुरु ही माध्यम होता है। उसके द्वारा दिए गए नाम की सहायता से ही हम ईश्वर तक पहुँचने में सक्षम होते हैं। वह एक कड़ी है। नाम के सहारे से ही सर्वप्रथम गुरु में लय होते हैं। नाम की यह विशेषता है कि संध्या हम इन्हीं पंक्तियों से शुरू करते हैं "

' बंदउ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि !

महा मोह तम पुंज जासु वचन रवि कर निकर !! "

(मनुष्य रूप में साक्षात् हरि जो तीनों तापों को हरण करने वाले कृपा के समुन्द्र हैं, ऐसे ज्ञानदाता गुरुदेव के चरण कमलों की मैं वंदना करता हूँ जिनके वचन से महामोह रूप अज्ञानअन्धकार का ढेर ऐसे नष्ट हो जाता है जैसे कि सूर्योदय होने पर रात्रि का अन्धकार नष्ट हो जाता है।)

नवधा भक्ति में राम के मन्त्र का निरन्तर जाप पाँचवीं भक्ति करके बताया गया है। गुरु के साथ सत्संग करने से जो हमारे मन में गुप्त रूप से जारी हो जाता है यानी 'शब्द' वह नाम का ही स्वरूप है और उसकी महिमा अनन्त है। सुरत-शब्द-योग में जिस शब्द की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया गया है, जोकि विभिन्न स्थानों पर हो रहा है वह यही नाम है। गुरु के सतत शरीर का दर्शन करते- करते जब हम लोगों में शब्द जारी हो जाता है तो शरीर की पूजा को छोड़ देने का आदेश गुरु देते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि गुरु के शरीर के स्थान पर शब्द यानी नाम ही हमारा गुरु हो जाता है। हम एक सीढ़ी ऊपर चढ़ जाते हैं ओर आगे ऊपर चढ़ते ही रहते हैं।

नामु राम को कल्पतरु कलि कल्याण निवासु !

जो सुमिरत भयो माँग ते तुलसी तुलसीदास !!

(नाम से हम भव पार हो जायेंगे इसमें कुछ भी संशय नहीं है क्योंकि नाम का प्रताप कलि (काल) में प्रकट होगा अथवा राम का नाम जो बीज मंत्र है वह कल्पवृक्ष का रूप धारण कर कलि के जीवों का कल्याण करने के लिए निवास करेगा। जिसके स्मरण मात्र से तुलसी 'तुलसीदास' अर्थात् संत हो गए। यह बड़े ही भाग्य की बात है।)

वेदों के समय से ही नाम की महिमा किसी न किसी रूप में गायी गई है। बाद में चलकर इसीलिए राम के नाम को त्रिगुण से न्यारा कहा गया है। भगवान कृष्ण ने अपने स्वरूप का, आत्मा, मन, बुद्धि आदि सभी इन्द्रियों का ओर उनके देवताओं का तथा ज्ञान व कर्म का ज्ञान कराने के लिए बहुत समझाया। किन्तु जब अर्जुन की समझ में नहीं आया तब भगवान् श्रीकृष्ण ने उसी अव्यक्त नाम के द्वारा, जो सबके हृदय में समान रूप से व्यापक है, अर्जुन को ज्ञान कराया। ईश्वर का दर्शन हमें नहीं हो सकता। इसीलिए हम गुरु की आराधना साकार रूप में करते हैं। जब मनुष्य में शब्द यानी नाम जारी हो जाता है तो हम उसके निराकार रूप तक पहुँच जाते हैं। नाम का लाभ अनेक रूपों में होता है। मनुष्य इस माया रूपी संसार में तरह-तरह के दुःखों से घिरा है। कभी-कभी तो वह बहुत ही चिन्चित व परेशान हो जाता है। किसी भी घोर संकट में मनुष्य क्यों न हो, यदि वह नाम का सहारा ले तो उन सभी से उसे छुटकारा प्राप्त हो सकता है। नाम में अत्यधिक शक्ति होती है। वह ईश्वर रूप में हमारे अंतर में बैठा हुआ है।

दृष्टान्त - राधा, जो कृष्ण की प्रेमिका थी, नाराज़ हो कर चली गयी। कृष्ण पीछे-पीछे गये। जब बहुत दूर चली गयी तो ख्याल आया की मई क्यों नाराज़ हो गयी, तो लौट कर देखा कि

कृष्ण मौजूद हैं। आत्मा परमात्मा से विमुख हो गयी और दूर चली गयी है। जब लौट कर देखती है तो उसे अपने समीप पाती है। जिव राधा है, कृष्ण ईश्वर है।

यह कथा बड़ी रोमांचक है। भगवन श्री कृष्ण सहसा अंतर्ध्यान हो गये। उन्हें न देख कर गोपियों की वैसी दशा हो गयी जैसे युद्धपति गजराज के बिना हाथियों की होती है। उनका हृदय विरह की ज्वाला से जलने लगा। भगवान श्री कृष्ण की मदोन्मत गजराज की सी चाल, प्रेम भरी मुस्कान, विलास भरी चितवन, मनोरम प्रेमालाप, भिन्न-भिन्न प्रकार की लीलाओं तथा श्रृंगार रस की भाव भंगिमाओं ने उनके चित्त को चुरा लिया था। प्रेम की मतवाली गोपियाँ श्री कृष्णमय हो गयी और श्री कृष्ण के विभिन्न भावों का अनुकरण करने लगी। अपने प्रियतम श्री कृष्ण की चाल-ढाल हास-विलास और उनके चितवन बोलने आदि में श्री कृष्ण की प्यारी गोपियाँ उनके समान ही बन गयीं, उनके शरीर में वही गति का अनुकरण करती हुई, मैं कृष्ण ही हूँ” इस प्रकार कहने लगी। वे सब परस्पर मिलकर ऊँचे स्वर से, उन्हीं के गुणों का गान करने लगी और मतवाली हो कर एक वन से दूसरे वन एक झाड़ी से दूसरे झाड़ी में जा कर श्री कृष्ण को ढूँढने लगी। भगवन श्री कृष्ण दूर थोड़े ही गये थे। वे तो समस्त जड़ चेतन पदार्थों में तथा उनके बाहर भी आकाश के समान एकरस स्थिति हीं हैं। वे वहीं थे, उन्हीं में थे, परन्तु उन्हें न देख कर गोपियाँ वनस्पतियों से, पेड़ पौधों से उनका पता पूछने लगी।

इस प्रकार गोपियाँ मतवाली सी हो कर अपने सुध बुध खो कर एक दूसरे को भगवन श्री कृष्ण के चरण चिन्ह दिखलाती हुई वन वन में भटक रही थी। इधर भगवन श्री कृष्ण दूसरे गोपियों को वन में छोड़कर जिस भगवती गोपी को एकांत में ले गये थे, उसने समझा कि मैं हीं समस्त गोपियों में श्रेष्ठ हूँ इसलिए तो हमारे प्यारे श्री कृष्ण दूसरे गोपियों को छोड़कर जो उन्हें इतना चाहती है, केवल मेरा हीं मान करते हैं, मुझे हीं आदर दे रहे हैं। भगवन श्री कृष्ण ब्रह्मा और शंकर के भी शासक। वह गोपी वन में जा कर अपने प्रेम और सौभाग्य के मद से मतवाली हो गयी और उन्हीं श्री कृष्ण से कहने लगी “प्यारे, मुझसे तो अब और नहीं चला जाता, मेरे सुकुमार पाँव थक गये हैं। अब तुम जहां चलना चाहो मुझे अपने कंधे पर चढ़ाकर ले चलो”। अपनी प्रियतम की यह बात सुनकर श्यामसुंदर ने कहा - “अच्छा प्यारी ! अब तुम मेरे कंधे पे चढ़ लो” यह सुन कर गोपी ज्यों हीं उनके कंधे पर चढ़ने लगी त्यों हीं श्री कृष्ण अंतर्ध्यान हो गये और वह सौभाग्यवती गोपी रोने पछताने लगी। हाँ नाथ, हाँ रमण हाँ महाभुज ! तुम कहाँ हो ? कहाँ हो मेरे सखा ! मैं तुम्हारी दीन हीन दासी हूँ। शीघ्र हीं मुझे अपने सानिध्य का अनुभव कराओ, मुझे दर्शन दो। गोपियाँ भगवन श्री कृष्ण के चरण

चिन्हों के सहारे उनके जाने का मार्ग ढूँढती वहाँ जा पहुंची । थोड़ी दूर से ही उन्होंने देखा कि उनकी सखा अपने प्रियतम के वियोग से दुखी हो कर अचेत हो गयी ।

इसके बाद वन में जहां तक चन्द्रदेव की चांदनी छिटक रही थी वहां तक वे ढूँढती हुई गयी । गोपियों का मन कृष्णमय हो गया था उसकी वाणी से कृष्ण चर्चा के अतिरिक्त और कोई बात नहीं निकलती थी । उनके शरीर से केवल श्री कृष्ण के लिए और केवल श्री कृष्ण की चेष्टाएँ हो रही थी । कहाँ तक कहूँ उनका रोम रोम, उनकी आत्मा, कृष्णमय हो रही थी , केवल उनके गुणों और उनकी लीलाओं का ही गान कर रही थी और उनमें इतना तन्मय हो रही थी कि की उन्हें अपने शरीर की भी सुध नहीं थी । फिर घर की याद कौन करता है ? गोपियों का रोम रोम इस बात की प्रतीक्षा और आकांक्षा कर रहा था कि जल्दी से जल्दी श्री कृष्ण आये । श्री कृष्ण की ही भावना में डूबी हुई गोपयां यमुना जी के पावन पुलिन पर रमणरेती लौट आई और एक साथ मिलकर श्री कृष्ण के गुणों का गान करने लगी ।

00000000

कथनी, करनी व रहनी

परमार्थ के रास्ते में करनी, कथनी और रहनी - इन तीनों का बहुत महत्त्व है। कबीर साहब ने कहा है :

कथनी करे सो पुत्र हमारा, करनी करे सो नाती !

रहनी रहै सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी !!

पिता को अपना पुत्र प्यारा होता है, पुत्र से अधिक प्यार नाती से होता है और सबसे अधिक प्यार गुरु से होता है क्योंकि गुरु ही ईश्वर से मिलाने वाला होता है। कबीर साहब कहते हैं कि जो मनुष्य ऐसे कर्म करता है जो उसे परमार्थ के पथ पर आगे बढ़ाते हैं, यानी सतकर्म करता है वह मुझे पुत्र की तरह प्यारा है। जो मेरे कहने के अनुसार कर्म करता है (यानी जो गुरु के कहने पर चलता है) वह मुझे नाती की तरह प्यारा है और जिसने अपनी रहनी, सहनी (practical life) मुझ जैसी (संतों जैसी) बना ली है वह मुझे गुरु की तरह प्यारा है। मैं उसी का साथी हूँ ?

दो चीज़ें होती हैं। एक सिद्धांत (theory) और दूसरी प्रैक्टिस (practice) यानी प्रयोग या व्यवहार में लाना। करनी और कथनी थ्योरी में आते हैं। थोड़ा सा अन्तर जरूर है। करनी, यानी सतकर्म को मनुष्य अपने मन से सोच कर या दूसरों की देखा-देखी भी कर सकता है लेकिन कथनी करना यह है कि जो गुरु कहे वैसा करे। तब गुरु का प्यार मिलता है। बिना गुरु का प्यार मिले, गुरु और शिष्य का मन एक नहीं होता और बिना मन एक हुए रहनी यानी व्यावहारिक जीवन (practical life) नहीं बनता ।

पहले-पहल शिष्य अपनी बुद्धि से ही गुरु के उपदेश को कबूल करता है। परन्तु मन उसका साथ नहीं देता। तर्क-वितर्क उठाया करता है कि जो कुछ उन्होंने कहा है वह ठीक है या गलत, उसे करें या न करें। इसलिए पूरा फायदा नहीं होता। जब मन कबूल कर लेता है तब इन्द्रियाँ साथ देने लगती हैं और परमार्थ के रास्ते में आगे बढ़ने लगता है। परमात्मा के पाने का रास्ता बहुत लम्बा है। सिद्धांत को कौन नहीं जानता, रहनी कौन नहीं बना सकता लेकिन थ्योरी यानी सिद्धांत को प्रयोग में लाना बहुत कठिन है। बीच में जो मन है वह ऐसा नहीं होने देता । ऐसा कौन है जो गुनाह नहीं करता ? ऐसा कौन है जो सिद्धांत रूप से यह नहीं जानता कि ईश्वर हर जगह मौजूद है, लेकिन गुनाह करते वक्त यह ख्याल कहाँ चला जाता है ? उस पर मन हावी हो जाता है। इसलिए कथनी पर चलने में मन को गुरु की नाराज़गी का डर रहता

है, कहीं गुरु रूठ न जाएँ, कोई काम ऐसा न हो जिससे मैं गुरु के प्यार से वंचित रह जाऊँ। कथनी में यही अंकुश सहायक होता है। हम गुरु के प्यार के खौंफ में कथनी पर चलते हैं और रहनी-सहनी बनाते चले जाते हैं, यही असली परमार्थ है।

निचले दर्जे का ज्ञान यानी भौतिक वस्तुओं का ज्ञान इन्द्रियों से आता है। उस से ऊँची अवस्था में यानी सूक्ष्म अवस्था में जो ज्ञान आता है वह मन से आता है और मन की झलक लिए हुए होता है। परन्तु कारण से भी महाकारण का ज्ञान, सबसे विशुद्ध ज्ञान यानी परमात्मा का ज्ञान, सिर्फ आत्मा से अनुभव होता है। लेकिन आत्मा जन्म-जन्मान्तर से मन और उसकी वासनाओं के आवरणों से ढकी चली आ रही है। इसलिए जब तक वह निर्लेप न हो जाये और मन के फन्दों से न्यारी न हो जाये तब तक सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। जब तक ऐसा नहीं होता तब तक जैसा आपका खयाल होगा, मन वैसा ही रूप दिखायेगा। जो इच्छा आज आप कर रहे हैं यानी परमात्मा को पाने की, वह और इच्छा के मुकाबले में दबी हुई है। जब तक उसमें सच्ची intensity (उग्रता) पैदा नहीं होगी तब तक आप कामयाब नहीं होंगे। जैसे-जैसे आप के खयाल में तेज़ी आती जाएगी वैसे-वैसे कामयाबी होने लगेगी और आहिस्ता-आहिस्ता जैसा आपका खयाल है वैसे ही आप हो जाएंगे। हमारा मतलब है कि आत्मा को मन के धोखे से बचाना चाहिए। पर माया जिसका representative (प्रतिनिधि) मन तुम्हारे अन्दर बैठा हुआ है वह आसानी से पीछा नहीं छोड़ती। जवाँमर्द (शूरवीर) वही है जो रास्ते पर डटा रहे और मन को काबू में कर ले।

हमारे यहाँ संतमत में माया से लड़ाई नहीं लड़ते, उसका विरोध नहीं करते, माया को माँ का रूप मान कर, उसका सहारा लेकर, उसका आदर करते हुए, उससे बच कर निकल जाते हैं। सारी सृष्टि, प्रकृति की एक-एक चीज़, सारे ब्रह्माण्ड, माया के चक्कर में नाच रहे हैं। यह बड़ा विचित्र है। आदमी का मन इसी का रूप है। वह उसे जैसा चाहे बनाती है। इसीलिए हरेक individual (व्यक्ति) में फर्क है। आत्मा तो सबकी एक सी है, सिर्फ मन ही सब का न्यारा है। इसी के कारण सबका स्वभाव, शक्ल, सूरत और आदतें एक सी नहीं होतीं। दुनिया में जब से सृष्टि बनी है, अरबों-खरबों इन्सान पैदा हुए और मर गए लेकिन दो इन्सान कभी हू-ब-हू एक जैसे नहीं हुए। इसी तरह पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, सभी में एक जैसा दूसरा कभी नहीं होता। बाहर से देखने में कैसा ही एक सा लगे, स्वभाव में फर्क होगा, लिखने में फर्क होगा, आवाज़ अलग-अलग होगी। यही इस माया की विचित्रता है। चूँकि मन माया का ही रूप है, इसीलिए माया के पसारे से यानी दुनिया से इसे प्रेम है। सिर्फ एक आत्मा ही ऐसी है जिसे

ईश्वर से सच्चा प्यार है। उस प्यार में इतनी कशिश (आकर्षण) होती है कि उसके सामने दुनिया के नफे नुकसान की कोई परवाह नहीं होती। सच्चा प्रेमी तो कहता है कि चाहे मेरे बच्चे न रहें, घर जल जाय, शरीर बीमारी का घर बन जाय, तो भी ईश्वर का प्रेम मुझसे न छूटे। ऐसी हालत तब तक नहीं आती जब तक आत्मा मन से न्यारी होकर शुद्ध नहीं हो जाती। इसलिए मन के प्यार से हट जाना चाहिए। जो आत्मा की नज़र से प्यार करेगा या तो वह ईश्वर होगा या उसका कोई सच्चा प्रेमी।

बहुत से लोग चालीस दिन तक रोजा (उपवास) रख कर ईद का चाँद देखते हैं। पर असली ईद क्या है ? इसे हरेक समझने की कोशिश नहीं करता। चालीस दिन तक रोजा रखकर एकान्त में तल्लीनता से भजन ध्यान किया जाय तो त्रिकुटी में चन्द्रमा के दर्शन होते हैं। हज़रत मोहम्मद ने जब चालीस दिन तक रोजा रखा और चिल्ला चढ़ाया तब त्रिकुटी पर दूज का चाँद दिखाई दिया। उससे ऊपर पूर्णमासी का चन्द्रमा, उससे भी आगे सूर्य के दर्शन होते हैं। यह केवल कल्पना ही नहीं है, सन्तों ने इसका अनुभव किया है। वे जब अंतर की चढ़ाई करते हैं तो जिस चक्र पर पहुँचते हैं, वहाँ का हाल बयान करते हैं। मनुष्य की देह में नीचे से ऊपर तक कुल २१ चक्र होते हैं। ६ गुदा से लेकर माथे तक हैं, ६ वहाँ हैं जहाँ ग्रे मैटर (grey matter) है। (यह दिमाग में होता है) ६ चक्र bright matter (ब्राइट मैटर) में हैं - यहीं पर शब्द गूँज रहा है। जो ग्रे मैटर में हैं उनका सम्बन्ध ब्रह्माण्ड से है। वहाँ भी ६ लोक हैं जिनका जगाना इससे सम्बन्ध रखता है। अधिकतर सन्तों ने १८ चक्रों का हाल लिखा है। शेष तीन चक्र गुप्त हैं जो वर्णन में नहीं आ सकते, केवल अनुभव किये जाते हैं। किसी एक चक्र पर पहुँच कर वहाँ ठहर जाना सन्तों का लक्ष्य नहीं होता, इसीलिए वे बराबर ऊपर उठते जाते हैं जब तक कि वे सब चक्रों को पार करके दयाल देश नहीं पहुँच जाते।

साधारणतया स्त्रियों में पन्द्रह चक्र हैं। पशुओं में सिर्फ तीन चक्र होते हैं - काम, आलस और क्रोध। मनुष्यों में भी अन्य चक्रों के अलावा ये चक्र होते हैं और जो मनुष्य केवल इन्हीं में बरतते हैं ऊपर नहीं उठते, वे जीते जी पशु समान हैं और मरने के बाद पशु योनि में जाते हैं। लेकिन अगर उनसे ऊपर के चक्रों में बरतते हैं तो इन्सान बन सकते हैं। कहने का मतलब यह है कि जितनी वासनाओं से ऊपर उठोगे उतनी ऊँची योनी प्राप्त कर सकोगे। नीचे के चक्रों में बरतते वक्त सिर्फ फ़र्ज़ पूरा करने के लिए उतरों, लेकिन ऊपर की लगन यानी डोरी न टूटने पाये। हमारी पैदायश हृदय चक्र से हुई है। राम अवतार थे, उनकी पैदायश त्रिकुटी के

मुकाम से हुई थी। इस जन्म में हम जिस चक्र तक रसाई हासिल कर लेंगे, अगले जन्म में हमारी पैदायश वहीं से होगी।

सन्त दो प्रकार के होते हैं। एक अवतारी सन्त जो दयाल देश से आते हैं। जीवों को चेताकर, उन्हें आत्म-ज्ञान के रास्ते पर लगाकर, अपना काम पूरा करके वापिस लौट जाते हैं। दूसरे वे होते हैं जिनके ऊपर अवतारी सन्त अपना काम छोड़ जाते हैं। उसे पूरा करके स्वयं निर्वाण प्राप्त करते हैं और आगे काम करने के लिए किसी अन्य को नियुक्त कर जाते हैं। गुरु हर व्यक्ति नहीं हो सकता। जिसके लिए ऊपर से हुक्म होता है वही इस सेवा को कर सकता है। इस काम में धोखा बहुत है, अतः किसी सच्चे गुरु की खोज करनी चाहिए। कोई ऐसा महापुरुष मिल जाये जिसने स्वयं आत्मानुभव कर लिया हो, वही रास्ता दिखायेगा। उसके बताये हुए रास्ते पर चलकर जब तक स्वयं आत्मानुभव नहीं कर लोगे तब तक भव जाल से नहीं निकल सकोगे। अतः महापुरुष की खोज करो जो बाहर से स्थूल शरीरधारी हो और अन्दर से आत्मा में लीन हो।

कमल पदम् उसे कहते हैं जो ब्रह्माण्ड में है। जानवरों के कुल तीन चक्र खुले होते हैं बाकी सब बन्द होते हैं। उनको खोला नहीं जा सकता। उन पर डाट लगे होते हैं, यानी चक्र की जगह सिर्फ बिन्दु होते हैं। साधारण स्त्रियों में केवल पन्द्रह चक्र खुले होते हैं। शेष सब बन्द रहते हैं। उनकी बनावट ही ऐसी होती है। पुरुषों में अठारह चक्र होते हैं। इनके अलावा तीन चक्र गुप्त होते हैं। कुछ स्त्रियाँ भी ऐसी हुई हैं जिनके अठारह चक्र खुले हुए थे- जैसे मीराबाई, सहजोबाई। साधारण स्त्रियों के चक्र देवी-देवताओं के स्थान तक ही खुले रहते हैं।

सबसे निचला और पहला चक्र गुदा के स्थान पर होता है। दूसरा इंद्रि के स्थान पर, तीसरा नाभी के स्थान पर, चौथा हृदय के स्थान पर, पाँचवा कण्ठ के स्थान पर और छठा चक्र त्रिकुटी (भ्रौंकों के बीच की जगह) से तीन इंच नीचे की ओर है। वहीं प्रकाश है। यदि वह स्थान disturb (उथल पुथल) हो जायेगा तो प्रकाश नहीं आएगा। जब मनुष्य तम में बसता है तो यह प्रकाश नहीं होता। तम माने इन्द्रियाँ यानी जब तक वह अपनी इन्द्रियों के वश में रहेगा त्रिकुटी के स्थान पर नहीं पहुँचेगा और न ही उसे प्रकाश के दर्शन होंगे, इन्द्रियों को मन से अलग करना होगा। अभ्यास में दोनों optic nerves (वे स्नायु जो दोनों आँखों से त्रिकुटी में जाती हैं) को फाड़कर ऊपर जाते हैं। कहा जाता है कि हज़रत मौहम्मद सफेद घोड़े पर सवार होकर आसमान में गए और उन्होंने चाँद के दो टुकड़े कर दिए। यह त्रिकुटी का पार करना है। सफेद घोड़ा प्रकाश का द्योतक है। शिव जी के माथे पर चन्द्रमा बनाया है। यह त्रिकुटी का द्योतक है।

। राम ने इसी स्थान पर शिवजी का धनुष तोडा था। धनुष त्रिकुटी का द्योतक है । इसी त्रिकुटी के स्थान पर सारे वेद-वेदान्त ओर कुरान लिखे गए। यहीं से आत्मा बुद्धि को प्रकाश देती है। जाग्रत, सुषुप्ति, तुरिया,तुरीयातीत अवस्थाओं में यहीं से ज्ञान प्राप्त करते हैं, अतः इस मुकाम पर ही पहुँच कर सरे उच्च कोटि के धर्म ग्रन्थ (scriptures) लिखे गए हैं। अधिकारी वह है जिसे दुनिया की सब चीज़ें मयस्सर हैं परन्तु फिर भी दुखी है,

0000000

सबसे ऊँची प्रेम सगाई

हमारे यहाँ का साधन प्रेम का है। प्रेम का ही अभ्यास कराया जाता है। किसी तरह का त्याग भी नहीं कराते, प्रेम को अपनाते हैं ।

शरीर में तीन अवगुण हैं । सिर यानी बुद्धि, मन यानी दिल, हाथ। बुद्धि से सदा गुरु का ध्यान करें। मन में उनके प्रति तड़प हो और हाथों से सेवा करें। इन तीनों का इस प्रकार प्रयोग करें तभी प्रेम पूर्ण होगा ।

प्रेम - सांसारिक वासना युक्त प्रेम में जिस तरह से प्रेमी अपनी सुन्दर पत्नी को छोड़ जाता है, घर वालों और सबकी लाँछन की कोई परवाह नहीं करता और सभी तरह की रुकावटों को एक ओर छोड़कर अपनी प्रियतमा के पास चला जाता है, ऐसा ही प्रेम अपने गुरु से होना चाहिए। सांसारिक वासना युक्त प्रेम और परमात्मा या गुरु के प्रेम में कोई अन्तर नहीं है, केवल अपने विचारों को मोड़ देना है, नज़रों का ही बदलना है। शिष्य तीन तरह के होते हैं ।

(१) गुरु की रहनी- सहनी को निगाह में रखते हैं, कोई काम दिखावे का नहीं करते बल्कि गुरु की ज़रूरत का सब सामान उपलब्ध कराके अलग हो बैठते हैं । उनको बतलाना नहीं पड़ता। वह गुरु के हर ख्याल को भांपते हैं और उसी के मुताबिक कारबन्द (काम करना) होते हैं। यह उत्तम शिष्य हैं ।

(२) वह जिज्ञासु जो खुद read (आभास) नहीं करते बल्कि उनको कहना पड़ता है। वे कहने के मुताबिक चलते हैं। यह शिष्य मध्यम हैं ।

(३) वह जिज्ञासु जिसको लाख कहा जाये सुनते ही नहीं बल्कि इस कान से सुनकर उस कान से निकाल देते हैं। ऐसे शिष्य निकृष्ट श्रेणी के हैं । परमार्थ के मार्ग पर चलने वाले जिज्ञासु के लिए आपने *तीन मुख्य बातें* आवश्यक बतायीं हैं :

१। आत्मा की शुद्धि कुछ कष्ट सहकर प्राप्त होती है। ऐसी रहनी-सहनी जो हमारे अन्तर की सफाई करती है और बुरे कर्मों से छुटकारा दिलाती है। हुए बार-बार इश्वरोन्मुखी करती है। इस तरह अभ्यासी जब गुरु की तरफ प्रेम से आकृष्ट होता है तो उसे संसार की तरफ से दुःख तकलीफें मिलती हैं।

२। गुरु से प्रेम करने से गुरु का प्रेम मिलता है और गुरु अपनी दयालुता से जिज्ञासु की आन्तरिक उन्नति करता है । जब अन्तर में चढ़ाई होने लगती है तब अहंकार के चक्कर में

फँसने लगता है। जब तक अहंकार खत्म नहीं होता तब तक परमार्थ (दीन, आध्यात्म लाभ) नहीं मिल सकता ।

३। जिज्ञासु की अपनी खुदी (अहंकार) सिखाती है। रूह (आत्मा) इस खुदी को मिटाकर उसका दीन (धर्म) बनाती है ।

0000000

कर्मों का प्रभाव

मनुष्य का चित्त बड़ा ही चंचल होता है। कभी-कभी मन की हालत बहुत अच्छी चल रही होती है कि अचानक बुरे विचार आकर हमें दबा लेते हैं। कभी-कभी तदनुसार बुरे कर्म भी करा लेते हैं। हम रोते हैं, सोचते हैं हमसे क्या गलती हो गयी। यह गलती नहीं है। यह पिछले कर्मों का देय है। हमारे संचित पुराने कर्म मौका पाकर हम पर हमला कर देते हैं। हमें ऐसे पकड़ते हैं जैसे पेट्रोल आग को पकड़ता है। हमारे अन्दर कोई खराबी नहीं, हम रोज़ाना सत्संग, भगवान की पूजा, सभी कर रहे हैं फिर भी हम गिर पड़ते हैं। उसकी वजह केवल यह है कि पुराने संस्कारों का वेग हमारे ऊपर आया।

संस्कारों के इस वेग से बचने के लिए एक ही मार्ग है कि जो अभ्यास आप करते हैं उसमें अपने गुरु को सामने रख कर प्रार्थना करो। प्रार्थना अगर आप सच्चे दिल से कर रहे हैं तो फ़र्क पड़ेगा। धीरे-धीरे आपकी इच्छाओं में और जो वेग आया था उसमें कमी पड़ जाएगी। गुरु (मालिक) के प्रेम में जितनी व्याकुलता होगी उतना ही फायदा होगा। और अन्त में जो संचित कर्म कई जन्मों तक भोगने पड़ते वह थोड़े समय में ही भुगत गए - कितनी कृपा और दया है।

जिस बुरे कर्म के करने से पश्चाताप न हो, आनन्द आवे, फिर करने की इच्छा हो, उसकी जड़ मज़बूत होती चली जाती है और तुम उसमें फँसते चले जाते हो।

जब हम किसी lower passion (हीन वासना) की ख्वाहिश करते हैं तो जहाँ पर हमारा standing point (बैठक) होता है हम उससे नीचे गिर जाते हैं। यानी कि जिस केंद्र पर आप हैं और वहाँ आपको कोई हीन वासना हुई और आपने उसको भोगा, उसके बाद सुरत (attention) वहाँ से हट गयी, आप किसी और काम में लग गए लेकिन सुरत का कुछ अंश वहाँ रह गया। अगर नहीं रहा तो उसकी याद कैसे आयी। तो जहाँ आपको किसी चीज़ की याद आती है तो आपकी सुरत वहाँ पहले से मौजूद रहती है। उसमें आनन्द आने के कारण ही आप उसमें फँसे रहते हैं। सुरत के साथ आत्मा पर मन सवार रहता है और जब-जब उस काम को या भोग को किया तो आपकी सुरत का कुछ हिस्सा वहाँ रह गया। जब-जब उस कर्म की पुनरावृत्ति हुई सुरत का कुछ हिस्सा उस निचले स्थान पर रहता गया। धीरे-धीरे वह व्यवहारिक रूप ले लेता है। जैसे शराब की याद आती है तो जितनी बार आप शराब पियेंगे उतनी ही दफा आपकी सुरत उस ऊपर के स्थान पर जहाँ आपकी बैठक थी वहाँ से नीचे उतर कर आ गयी। इसी तरह करते-

करते आदमी नीचे गिरता चला जाता है। भोग के बाद वह समझता है की ख्याल वहाँ से हट गया। हट नहीं गया वहाँ तो उसकी जड़ बन गयी। इसी तरह इसके ठीक विपरीत जब हम ईश्वर का ध्यान करते हैं तो जितनी देर के लिए हमारी सुरत ऊपर चढ़ती है हम उतनी देर वहाँ का आनन्द लेते हैं। अभ्यास के बाद काम-काज में लगने पर भी हमारी सुरत का कुछ अंश वहाँ रह जाता है। इस तरह अभ्यास करते-करते हमारी सुरत की आधे से अधिक बैठक ऊपर के स्थान की हो जाएगी। इस तरह चाहे नीचे की ओर ले जायें या ऊपर की ओर, हमारी सुरत का कुछ अंश वहाँ रह जाता है ।

सुरत को तरह-तरह की इच्छाओं में फँसाकर नाम-मात्र बचे सुरत के अंश से ईश्वर प्राप्त करना चाहते हो ? असम्भव है, कर ही नहीं सकते। अपने कर्तव्यों को तो करना ही पड़ेगा मगर लगाव, शौक, चिपकाव के साथ नहीं । यानी कि जितना आप वहाँ से हटते जायेंगे उतना ऊपर के केंद्र में बढ़ेंगे और उसमें आनन्द आता जायेगा । जब आत्मा का आनन्द आएगा तो कोई भी काम केवल कर्तव्य के लिए होगा। उसमें आपका फँसाव नहीं होगा । जिस काम को आप pleasure (मात्रिक सुख) की खातिर करेंगे वह आपको अपनी तरफ खींचेगा ।

इसलिए अपनी सुरत को चारों ओर के अनावश्यक बातों से हटाकर आवश्यक कार्यों में लगा दो जो ज़रूरी हैं जैसे नौकरी, पढ़ना, बच्चों का पालन-पोषण, माता-पिता की सेवा, बाकी समय को इधर उधर मत गवाँओ। उस समय टीवी। देखने, नावेल पढ़ने के बजाय सुरत को केंद्रित कर लो ।

सन्तों की संगत में बैठ कर चिन्तन करो और अपनी शक्ति को जो आपके अन्दर छिपी है उसका manifestation (प्रकटीकरण) करो । इधर-उधर जो सुरत फैली हुई है उसे भी एकत्रित कर लो। उससे ऊपर चलो। तब तुम्हारी आत्मा को बल मिलेगा। यानी जिन बातों को आप छोड़ नहीं पा रहे थे उन्हें अब आसानी से छोड़ सकेंगे ।

मनुष्य का सबसे ज़्यादा पतन कामवासना (sex) में होता है । इसका स्थान नीचे है। अभ्यास करने से सुरत ऊपर की ओर रहती है लेकिन विषय-भोग के समय नीचे गिर जाती है। तो जिस सुरत को ऊपर ले जाने में आपको वर्षों लगे थे वह एक मिनट में नीचे गिर गयी। अब पुनः उसे ऊपर ले जाने में वर्षों नहीं तो महीने तो लगेंगे ही। इसलिए जहाँ तक हो सके अपने आपको इस भोग से बचाना चाहिए। कभी किसी चीज़ की आदत नहीं बनानी चाहिए। किसी चीज़

का प्रयोग उसकी उपयोगिता के अनुसार होना चाहिए। बाकी समय अलग रहें। इसी तरह संसार की प्रत्येक वस्तु जैसे भोजन लें पौष्टिक हो, स्वादिष्ट हो परन्तु उसमें रमें नहीं।

अपना जीवन चलाने के लिए जितनी शक्ति की ज़रूरत पड़े उतनी खर्च करो - और जो शक्ति इधर-उधर फैली हुई है उसे बटोर कर केंद्रित कर लो। इसके साथ-साथ जितनी शक्ति तुम्हारे अन्दर छिपी है उसे प्रकट करो। उसका विकास करो। जैसे बुद्धि का विकास करने के लिए आप पढ़ते लिखते हैं उसी तरह उस छिपी शक्ति का विकास करने के लिए ईश्वर का नाम लो। जो आन्तरिक अभ्यास तुम्हें बताया गया है उसको लगातार करते रहो। ऐसे संतों की संगत में बैठो जिन्होंने अपनी आन्तरिक शक्तियों को जाग्रत कर लिया है। उनके पास जाकर बैठो चाहे वह आपसे बात न करें पर उनका प्रतिविम्ब (focus) आप पर पड़ेगा। उनकी आत्मा बन्धनों से आज़ाद होकर जाग्रत और प्रकाशित होकर उभर आयी है, ईश्वर का प्रेम या ज्ञान जो भी गुण आत्मा का है उसी के आनन्द में, उसी के प्रेम में वे मग्न हैं। तब आप देखेंगे कि आपकी छिपी हुई शक्ति कैसे निकलती चली आती है। इसकी पहचान क्या है? जो विषय आपको कठिन लगता था अब वह एक ही दृष्टि में साफ-साफ समझ आने लगा। बुद्धि के स्थान (mental plane) पर भी इसका असर पड़ता है। शरीर के अन्दर भी इसका असर पड़ता है।

वास्तव में संगत का यह प्रभाव पड़ता है कि पहले हमारे आनन्द का केंद्र इन्द्रियाँ थीं, अब हमारे आनन्द का केंद्र आत्मा का ध्यान या ईश्वर का ध्यान हो गया है और बाकी सब कर्तव्य मात्र रह गया है। इससे कोई लगाव नहीं रहा। ऐसे व्यक्ति के पास जाएँ, चाहे वह बात करे या न करे, उसके वातावरण का प्रकाश जाने मात्र से ही आपकी आत्मा पर पड़ेगा। लेकिन अगर आप यह चाहें कि अभी गए और अभी आपकी आत्मा जाग जाये, ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि अभी आपके मन रूपी सागर में बहुत सी इच्छायें, तरंगें (desires) हैं। धीरे-धीरे उसका प्रकाश (focus) आप पर पड़ता है और जो चीज़ दबी हुई है वह सतह पर आ जाती है। आपके पास चुम्बक (magnet) है, लोहे के तार नीचे दबे पड़े हैं, चुम्बक के प्रभाव से ऊपर आ जायेंगे। जिसकी जाग्रत आत्मा है और हम उसकी संगति करते हैं तो उनके प्रभाव से हमारी आत्मा जो मन ओर इन्द्रियों से दबी हुई है धीरे-धीरे ऊपर आने लगती है और उसको चेतना होने लगती है।

पहली चेतना तो यही है कि वह सोचने लगता है कि वह कहाँ इस संसार के जाल में फंसा है और नाना दुःख उठा रहा है। जब आत्मा जग जाती है तो एक अजीब सी द्वन्द की

स्थिति हो जाती है। मन उसको संसार की ओर ले जाता है और आत्मा उसे दूसरी तरफ ले जाती है। इस द्वन्द की स्थिति में उसका कोई मित्र या गुरु अगर उसने बना रखा है जिसने आत्मा का अनुभव कर लिया है, तो उसका प्रेम ही भले ही वह अपनी इस द्वन्दस्थिति की सूचना उसे न दे, उनके सम्पर्क में न आये, परन्तु जब ख्याल करेगा तो प्रेम की धार उस पर पहुँच कर उसे शक्ति देगी और वह अपने मन से लड़ सकेगा। इस तरह आत्मा मन को दबा लेगी। आत्मा ओर मन का यह द्वन्द होता रहता है। इससे अभ्यासी घबरा जाता है और कहता है - " साहब यह तो कुछ नहीं, ख्याल ही ख्याल आ रहे हैं।" ख्याल तो आयेंगे ही, यह तो आपके पिछले जन्मों से दबे पड़े हैं। यह उन्हीं पुराने कर्मों का खेल है।

गुरु का जो तेज है उसके साथ-साथ ईश्वर प्रेम मौजूद है। तुम चाहते हो कि यह एकदम जाहिर हो जाये, वह तो नहीं होगा। वह कहने से नहीं जाता। प्रेम के ज़रिये से जाता है। वह परस्पर प्रेम के द्वारा शिष्य के दिमाग में जाता है। यह आन्तरिक विद्या (इल्म सीना) है मौखिक (इल्म सफीना) नहीं। यह मुँह से कह कर नहीं बताया जाता है। यह मन से मन को उतर जाता है। आत्मा आत्मा को कबूल कर लेती है। वहाँ जाकर उसका विकास होता है। जब प्रेम परिपक्व हो जाता है तब वह खुल कर बाहर आ जाता है।

तो या तो शान्ति थी तम में जब हमें बिल्कुल ज्ञान नहीं था और या शान्ति हुई तब जब आत्मा ऊपर आ गयी और मन दब गया। इन दोनों के बीच के समय में संघर्ष तो होता ही रहेगा। जैसे आपकी किसी से लड़ाई हो रही है और आपने अन्त में उसे दबा लिया। वह उठ ही न सके तब आपको चैन मिलेगा। इसी तरह अभ्यास की अवस्था में कभी मन जीतता है तो कभी आत्मा। शुरु-शुरु में पहले मन जीतता है किन्तु एक बार आत्मा जागकर फिर दब नहीं पायेगी। थोड़े दिन के लिए भले दब जाये, किन्तु फिर जाग जाएगी। आत्मा जब तक मन को पूरी तरह परास्त नहीं कर लेगी, बराबर संघर्ष करती रहेगी। इस रास्ते में थक-थका कर बैठना ही गलत है। मन बड़ा शक्तिशाली है। इसने इस पिण्ड (देह), ब्रह्माण्ड, पारब्रह्म और तमाम दुनिया को घुमा रखा है। हमारी क्या ताकत है जो इससे जीत सके। ईश्वर से शक्ति लो और लड़ते रहो। इसी तरह गिरते-पड़ते एक दिन ऐसा आएगा कि आप उस पर विजय पा जायेंगे। एक बार जहाँ काबू किया self confidence (आत्म विश्वास) तो आ ही जाता है। मन काल का पुत्र है। इससे लड़ने के लिए आत्मा जब तक अपने पिता, जो आदि पुरुष हैं, दयाल पुरुष हैं, परमात्मा हैं, का सहारा नहीं लेती, तब तक काल के पुत्र मन को पराजित नहीं कर सकती। तो गुरु के माध्यम से दयाल पुरुष से सम्बन्ध स्थापित कर लेना चाहिए। जहाँ सम्बन्ध पैदा हुआ

फिर काल और मन दोनों शान्त हो जाते हैं, माया छोड़ देती है। दुर्गा को ही काल कहते हैं। दोनों शक्तियाँ उस आदि पुरुष से निकली हैं। दयाल पुरुष से आत्मा निकली और काल पुरुष से मन निकला। काल का हमेशा यह प्रयत्न रहता है कि ईश्वर की तरफ न जाने पाये। आत्मा दयाल पुरुष का अंश है जब यह जाग्रत अवस्था में आ जाती है फिर यह मन के चंगुल से निकलने की चेष्टा करती है। तब दोनों में संग्राम होता है। मन दुनिया में फंसाना चाहता है - आत्मा दुनिया से निकलना चाहती है। जब आत्मा का सम्बन्ध ईश्वर से हो जाता है तो काल हमेशा के लिए दब जाता है, आत्मा आज़ाद हो जाती है और ईश्वर से मिल कर एक हो जाती है। यही जीवन का ध्येय है।

जाग्रत अवस्था में आकर संघर्ष करो। गिरते हो, कोई हर्ज़ नहीं, लेकिन रास्ते पर कायम रहे और चलते रहे तो एक दिन सफलता ज़रूर मिलेगी। थक कर रुक गए तो जो अभ्यास किया है वह व्यर्थ नहीं जायेगा, मगर जैसा गीता में भगवान कृष्णा ने कहा है, फिर शुरुआत होगी। हो सकता है मन बिलकुल ही उसे दबा दे किन्तु अगर किसी ने सतगुरु से अपना सम्बन्ध जोड़ लिया है दयाल पुरुष तक पहुँचने के लिए तो उसको मदद बराबर मिलती रहेगी। वह फंसेगा नहीं, सम्भव है वह एक जन्म में ही भवसागर पार हो जाये।

00000000

गुरु शिष्य का अन्तरंग प्रेम

निराकार, दयालदेश का मालिक और देहधारी गुरु सब एक हैं। सबका समान आधार है और सबकी एक समान उपासना होनी चाहिए। यह कैसे मुमकिन है कि हम गुरु को प्यार करें मगर दयालपुरुष और खानदान के बुजुर्गों से प्यार न हो। अगर सत्संगी भाइयों में आपस में प्यार न हो तो यह ज़रूर है कि उन्हें centre (अपने गुरु) से प्यार नहीं है। इसी तरह जितनी भी मज़हबी किताबें हैं उन सब में एक सी ही श्रद्धा हो। कुरान शरीफ में एक आयत आई है - " ऐ मोहम्मद, तेरे जैसे बहुत से पैगम्बर पैदा हुए हैं जिनमें से बहुत सों की तुझ को खबर है, बहुत सों की नहीं है। सब मुसलमानों कह दो कि सब पैगम्बरों की एक सी इज़्जत करो " इसलिए सारे अवतारों, सन्तों और धार्मिक ग्रंथों को समान आदर भाव से देखना चाहिए।

असली जिज्ञासु कौन है ? जिसको ईश्वर से मिलने की सच्ची चाह है और जो जीवन से ऊब गया है। मौजूदा हालत उसकी चाहे कुछ भी हो, चाहे वह अच्छे आचरण का न हो, परन्तु अगर उसमें प्रेम है, तड़प है, तो वही उसे हर हाल में निकाल ले जाएगी। यह मार्ग प्रेम का है। अगर आपके हृदय में गुरु के प्रति प्रेम है तो आप उससे प्रेम करेंगे और वह भी आपसे प्रेम करेगा। जब ऐसी हालत हो जाये कि उससे निरन्तर प्रेम की डोर लगी रहे और हर वक्त उसका ख्याल रहे तो दुनिया के ख्यालात आते भी रहें तो उसका कोई हर्ज़ न होगा। ऐसा अभ्यासी अगर गुरु के दर्शन करने न भी जाय तो भी कोई हर्ज़ नहीं है। लेकिन जिनको अभी ऐसा प्रेम पैदा नहीं हुआ है और जो फ़ायदा उठाना चाहते हैं तो यह ज़रूरी है कि तीन चार महीने में एक बार गुरु के पास जाते रहें। कुछ वक्त भले ही ज़्यादा लग जाये लेकिन फ़ायदा होगा। प्रेम की और गुरु से नाता जोड़ने की पहचान यह है कि जो ख्याल गुरु के दिल में पैदा हो वह शिष्य पर उतर जाये। फिर उस ख्याल को खत के ज़रिये या मिलने पर confirm (पुष्टि) कर लें। इसका अर्थ यह है कि शिष्य का निजी रूप जाग्रत अवस्था में आ गया और वह गुरु की शिक्षा क़बूल कर रहा है। लेकिन एक बात का हमेशा ख्याल करना चाहिए कि चाहे जितना भी आपका अनुभव खुल जाये, अन्दर से कितना भी आदेश मिलता रहे, लेकिन शैतान बड़ा शक्तिशाली है। वह कहीं भी धोखा दे सकता है। इसलिए अभ्यासी चाहे जितना भी ऊँचा हो, ख्याल से गुरु के कितना भी नज़दीक हो, स्थूल रूप में गुरु के दर्शन साल में दो-तीन बार कर लेने चाहिए। आपके सिलसिले में, बल्कि हर एक सिलसिले में, गुरु की बहुत importance (महत्ता) है। गुरु के निजी रूप का (प्रकाश रूप), नूरानी रूप का ध्यान किया जाता है। चाहे ध्यान में उसका स्थूल शरीर दिखता हो मगर वह नूरानी (प्रकाश) रूप है। अगर गुरु के फोटो का

ध्यान करते हो तो यह मूर्ति पूजा हो गयी। जिसका ध्यान करोगे वही मिलेगा । अगर तस्बीर या मूर्ति की पूजा करते हो तो मरने के बाद भी वही मिलेगी। आदर के तौर पर घर में फोटो रखना और बात है। सामने बिठा कर जो ध्यान किया जाता है वह उनके प्रकाश रूप का किया जाता है। वह प्रकाश बराबर सूक्ष्म होता जाता है, आगे जाकर सतपुरुष से मिला देता है।

तीन लय अवस्थाएं हैं - पहले अपने आप को गुरु में लय करो, फिर अनामी पुरुष में और फिर ईश्वर में। मुसलमानों में भी यही बात है। 'ला इलाही इल्लील्लाह ' अर्थात् कुछ नहीं है सिवा ईश्वर के। पहले अपने आपको पीर मुर्शिद में, फिर रसूल में और फिर अल्लाह में फ़ना करदो क्योंकि सिवाय उसके और कुछ सत्य नहीं है। लेकिन रसूल का मतलब सिर्फ हज़रत मोहम्मद साहब से नहीं है। हिन्दू सन्तों में भी राम की उपासना की गयी है। कहते हैं -

एक राम दशरथ घर डोले,

एक राम घट-घट में बोले !

एक राम का सकल पसारा,

एक राम त्रिगुण से न्यारा !!

हमारा लक्ष्य तो वह राम है जो त्रिगुण से न्यारा है। वह अरुपा है, अलख है, अगम है। पहले स्थूल गुरु का ध्यान आता है और वही प्रकाश गुरु के ध्यान में बदल जाता है। पहले फनाइयत (लय) गुरु में होती है और जब प्रकाश रूप में गुरु के दर्शन हो जाते हैं तो अप्रत्यक्ष रूप (indirectly) में गुरु से मदद मिलने लगती है। जब ऐसा परिचय मिलने लगे तो यह विश्वास करें कि गुरु पूर्ण है। इसी को प्रतीत कहते हैं। जब तक गुरु का सत्संग नहीं करेगा तब तक प्रीत नहीं पैदा होगी। बिना प्रीत के प्रतीत यानी विश्वास नहीं उत्पन्न होगा और बिना गुरु में विश्वास आये ईश्वर में विश्वास नहीं होगा। माया बड़ी प्रबल है। ऐसी अवस्था आने के बाद भी मनुष्य का स्खलन हो जाता है, कारण माया ने सारे ब्रह्माण्ड पर पर्दा डाल रखा है। यह परमात्मा की बड़ी कृपा है कि वह मनुष्य को इसके जाल से निकल देता है।

अन्य तरीकों में सिर्फ रास्ता बताया जाता है और अभ्यास भी कराया जाता है। हमारे यहाँ इससे आगे भी कुछ और है। गुरु अपनी कृपा, तवज्जह और इच्छाशक्ति से शिष्य के सतोगुणी मन को अपने मन में मिलाकर ऊपर ले जाता है जिससे शिष्य की आत्मा थोड़ी देर के लिए

बाहरी atmosphere (वातावरण) से उठ कर ब्रह्माण्डी मन का आनन्द लेने लगती है और जल्दी तरक्की होती जाती है ।

अगर किसी ने गुरु से आंतरिक सम्बन्ध (निस्बत) हासिल कर लिया है तो वह दूर बैठे भी फायदा उठा सकता है। हमें एक घटना याद आ गयी - जब हम फतेहगढ़ में हाई स्कूल में पढ़ते थे तो एक दिन हमारे पैर में चोट लग गयी। गुरुदेव उन दिनों कानपुर गए हुए थे। उन्हें घर पर न पाकर हमें बड़ा अफ़सोस हुआ। हम अपने घर गए तो पिता जी ने मारा। बोर्डिंग हाउस आये जहाँ हम रहते थे। रात तो हो गयी थी और हमारे पैर में बहुत दर्द हो रहा था। हमने स्टूल पर पैर रखकर गर्म पानी से सेंकना शुरू किया। इतने में हॉस्टल के सुपरिन्टेन्डेन्ट आ गए और नाराज़ होने लगे कि स्टूल मत खराब करो। दो चार सख्त बातें भी उन्होंने कहीं। सवेरे इम्तिहान था। हमें बहुत दुःख हुआ कि हमारा तकलीफ के मारे यह हाल है और कोई हमदर्द नहीं है। अगर एक हमदर्द है तो वह यहाँ नहीं है। हम अपने गुरुदेव की याद करके रोने लगे और रोते-रोते नींद आगयी। सवेरे को उठे तो दर्द कम था और हालत अच्छी थी। इम्तिहान दिया और जब लौट कर आये और हम दर्शन करने को गए तो बड़े प्रेम से मुस्करा कर पूछा - " उस रात तुम इतने परेशान क्यों थे ? हम संध्या कर रहे थे और तुम सामने आकर खड़े हो गए, तवज्जह दी और तुम चले गए । "

कहने का मतलब यह है कि जब निरन्तर प्रेम से गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तो एक के विचार दूसरे के ऊपर उतर जाते हैं। गुरु रूप में परमात्मा आकर हमारी सहायता करता है। मगर शर्त यह है कि प्रेम सच्चा और निस्वार्थ हो और अगर गरज़ भी हो तो प्रेम पाने की ख्वाहिश हो। गुरु का प्रेम ही ईश्वर प्रेम में बदल जाता है। हमें तो जो फायदा हुआ वह गुरु प्रेम से ही हुआ। हमारे गुरुदेव क्या थे ? जो कुछ थे वे ही जानते हैं। अगर खुदा कहूँ तो कुफ़्र आयद होता है (नास्तिक कहलाता हूँ)। उन्होंने हमसे कई बार कहा " जो चाहो मांग लो " लेकिन हमने उनसे कुछ नहीं माँगा। हमें अगर कभी तकलीफ भी होती थी तो हमने कभी उन्हें खबर नहीं किया। वे खुद ही चले आते थे। अगर सच्चा प्रेम है तो ईश्वर खुद ही खिंचा चला आता है।

परमार्थ के काम में जल्दवाजी नहीं होती है। दृढ़ संकल्प होना चाहिए। कुछ हर्ज़ नहीं अगर तरक्की नहीं होती है। जब चल पड़ो तो चलते जाओ। रास्ते से मत हटो, कामयाबी शर्तिया होगी। सभी शुरू में नक़ल करते हैं असल (यथार्थ) तो बाद में आती है। सच्ची भक्ति कोई-कोई करता है। लड़कियाँ बचपन में गुड़ियों का ब्याह (झूठा) रचाती हैं और फिर एक दिन अपना भी ब्याह

कर लेती हैं। गुरु के दरवाज़े से न हटें। कहा है - " *द्वार धनी के पड़ रहे, धका धनी का खाय* ' मुसीबतें आती हैं। गुरु इम्तिहान भी लेते हैं, मगर चाहे कुछ भी मिले, सुख या दुःख, वह तुम्हारी जान हैं। सबसे ज़्यादा इसी को अज़ीज़ (सर्वप्रिय) रखो ।

00000000

परमार्थ के लिए गुरु में अटूट विश्वास होना चाहिए

समझते हो गुरु को साधारण व्यक्ति और चाहते हो कि वह ईश्वर के दर्शन करा दे। पहले गुरु की प्रीति करो और उसकी बात का विश्वास करो। तब प्रतीत पैदा होगी। बिना प्रतीत के ईश्वर नहीं समझोगे और जब तक यह भाव नहीं आवेगा तब तक ईश्वर का अनुभव कैसे होगा ? दोनों का medium (माध्यम) जब तक एक नहीं होगा तब तक दर्शन नहीं होगा। यह शंका कि गुरु इन्सान हैं दर्शन करा सकेंगे कि नहीं, जब तक मौजूद है तब तक गुरु ध्यान नहीं देता। गुरु में चाहे सब कुछ सामर्थ्य हो जब तक शिष्य में गुरु के प्रति प्रीति और प्रतीत नहीं होती, फायदा नहीं होता है। इसीलिए भगवान् कृष्ण ने कहा है कि जो जिस भाव से मुझे भजता है उसी रूप में मैं दर्शन देता हूँ। संत कबीर ने कहा है -

गुरु को मानुष जानते कबीर ते नर अंध !

पढ़े लिखे लोगों को विश्वास जरा मुश्किल से होता है। वह लोग सोचते हैं कि वैसे ही ढोंग बना रखा है, एक जमात इकट्ठी कर रखी है। शिष्य की इस भावना को गुरु खूब समझता है परन्तु कुछ कहता नहीं है खुलकर। उसके हृदय में तो शिष्य की भलाई निहित होती है। वह सोचता है कुछ तो कर रहा है, उससे भी विमुख हो जायेगा।

प्रारम्भ में तो गुरु में blind faith (अंध विश्वास) करना ही पड़ता है। किसने अपने बाप को देखा है कि यही मेरा बाप है। बच्चे से माँ कहती है कि यह 'कौआ' है और वह मान लेता है। इसी तरह जब गुरु कहता है कि ईश्वर है और वह मान लेता है तब उसे फायदा होता है। बीजगणित में X मान लेते हैं तब सही सबाल निकलता है। अगर X न मानो तो सही सबाल नहीं निकलेगा। दुनिया के मामले में विश्वास करना पड़ता है। विश्वास पर ही सारा लेन देन और लौकिक व्यवहार चलता है। स्कूल जाओ तो अध्यापक कहेगा - 'कहो A B C D' परन्तु आप कहें मैं A B C D क्यों कहूँ तो मामला बिगड़ जायेगा और आपने अंग्रेजी पढ़ ली। पढ़े लिखे लोगों में अंध विश्वास नहीं आता। इसलिए सबसे ज़्यादा दिक्कत उन्हें mould (सुधार) करने में आती है। एक तो वह यह समझते हैं कि दुनिया में धोखा बहुत है, फिर हर चीज़ को वह अपनी अकल पर तौलने लगते हैं। जब तक अभ्यास करके मन शान्त न हो जाए और आत्मा का ज्ञान न खुलने लगे तब तक तुम यह नहीं समझोगे कि जो कुछ गुरु कहता है वह सही है। जब तक बुद्धि शुद्ध न हो जाये गुरु की बात पर अंध विश्वास करना ही पड़ेगा।

हमने जो कुछ हासिल किया वह गुरु में असीम विश्वास के कारण हासिल किया। जो कुछ उन्होंने कहा हमने मान लिया । कभी विपरीत विचार पैदा नहीं किये। गुरुदेव ने कहा कि "ईश्वर है, जितनी शक्ति मैं रखता हूँ उसके मुताबिक कह सकता हूँ कि ईश्वर अवश्य है ।" हमने मान लिया । जब हमें ईश्वर का अनुभव हो गया तब पूरा विश्वास हो गया कि जो यह कहते हैं बिलकुल ठीक है ।

0000000

हमारे गुरुदेव की देन

तरुवर फल नहीं खात हैं, सरवर पियहि न पान !

परमारथ के कारणे सम्पति सँचहि सुजान !!

इसी प्रकार दूसरों की भलाई के लिए संतों का अवतरण पृथ्वी पर हुआ करता है। पृथ्वी के विशाल प्रांगण में रहने वाले समस्त मानवों से उनका सम्बन्ध होता है। वह संसार में बिखरे हुए काँटों को चुनकर फूल बिखेरने के लिए आते हैं। जब-जब धर्म अपने असली रूप को भूल कर विकृत रूप धारण कर लेता है, मानव मानवता को भूल कर अमानव बन जाता है। भगवान् की ओर से कोई न कोई संत महात्मा इस पृथ्वी पर भेज दिए जाते हैं जो लोगों में धर्म को प्रतिष्ठित करके शांति मार्ग पर चलने की राह दिखाते हैं और वापस लौट जाते हैं। ऐसे ही एक महान आत्मा थे हमारे प्रतिपल स्मरणीय गुरुदेव परमसन्त डॉक्टर श्रीकृष्ण लाल भटनागर ।

उस वक्त की सामाजिक, राजनैतिक सभी परिस्थितियों को उन्होंने देखा। उस मार्ग के पथिकों को जो प्रकाश से अंधकार की ओर भाग रहे थे देखकर उनका कोमल हृदय द्रवित हो गया। मनुष्य स्वभाव से सुख-शांति की चाह करता है। उस समय उन्हें कोई राह दिखाने वाला नहीं मिला। जो मिले भी वे अपनी-अपनी अग्नि में जलते हुए दिखे। लोग जहाँ भी गए अतृप्त ही रहे। सभी अपना-अपना राग अलाप रहे थे। जाति, उपजाति व उनकी भी उपजातियाँ, धर्म और उस धर्म से ही पनपे हुए अनेक उपधर्म सबका विचित्र हाल था। पठन-पाठन, प्रवचन-व्याख्यान और वाद-विवाद में ही लोग उलझे हुए थे। तर्क के बल पर सत्य की खोज कर रहे थे। किसी बात का प्रैक्टिकल (प्रयोगात्मक) करना भुला दिया था। लोग तर्क के जाल में फँसकर रह गए थे। कर्मकाण्ड में जनता ऐसी फंसी कि हर तरह से आंतरिक शांति खो बैठी। बहुत से साधुओं ने लोगों को शान्तिपाठ पढ़ाना शुरू किया लेकिन केवल धन के लालच में। घर गृहस्थी को छोड़कर वैराग्य मार्ग पर चलना आसान नहीं था और अब भी आसान नहीं है। इस मार्ग को अपनाना आज के बलहीन और कम समय वाले गृहस्थ के लिए सहज नहीं लगा। जिसने घर गृहस्थी को छोड़कर वैराग्य मार्ग को अपनाया भी वह रास्ते में ही अटक कर रह गया। सच्चा वैराग्य तो तब होता है जब अपना सांसारिक कर्म करते हुए व्यक्ति का अन्तर्मन परमात्मा में लीन रहता है ।

ॐ असतो मा सदगमय

तमसो मा ज्योतिर्गमय

मृत्योर्मांमृतं गमय !

अर्थ - हे प्रभो, हमें इस परिवर्तनशील संसार से उठाकर, सदा एकरस रहने वाली आत्मा की ओर ले चलो । अन्धकार और अविद्या से हटा कर ज्ञान की जगमगाती हुई ज्योति का दर्शन कराओ तथा जीवन-सुख के चक्र से छुड़ा कर अमृत की ओर ले चलो ।

गुरुदेव ने इसी मार्ग की ओर संसार-सागर में डूबती - उतरती मानवता को पुकार कर चलने का सन्देश दिया। उन्होंने देखा कि अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाला मार्ग भारतीय संस्कृति के रोम-रोम में बसा है। उसे वही जानते हैं जो अपने आपको पहचानते हैं। यह वह प्रकाश है जो प्रकृति के कण-कण में प्रकाशित हो रहा है। वह, वह नाद या नाम है जो प्रकृति के अणु-अणु में चहुँ ओर ध्वनित हो रहा है। संसार के सभी वैज्ञानिकों का भी यही कहना है कि एक अदृश्य शक्ति काम कर रही है। सभी ने उस शक्ति को माना है। किन्तु उस शक्ति का परिचय तभी मिला जब अपने आप को उस करुणामयी शक्ति के हाथ में सौंप दिया। रामायण में भी कहा है -

सन्मुख होहि जीव मोहि जवहिं !

कोटि जम अध् नाशों तब ही !!

शरणागत के इस परम्परागत मार्ग को पूज्य गुरुदेव ने पुनर्जीवित किया । उन्होंने बताया कि इसकी प्राप्ति के लिए और कुछ करने की ज़रूरत नहीं है, केवल अपने आपको उसके सामने खड़ा कर देने की ज़रूरत है । इसके लिए सत्संग बहुत ज़रूरी है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं :

बिन सत्संग विवेक न होई !

रामकृपा बिनु सुलभ न होई !!

गुरुदेव कहा करते थे कि यह वाणी का सत्संग नहीं है। यह सत्संग उनके भक्तों का संग है जो उन्हें पा चुके हैं। जो इस भेद को जानता है वह ईश्वर ही हो जाता है। ऐसे महापुरुष के शरीर से भी प्रकाश और आनन्द की किरणें निकला करती हैं। उनकी कृपादृष्टि से, उनके सामीप्य से हमारी विवेक दृष्टि जाग्रत हो जाती है। यह बिना सद्गुरु से शक्ति मिले नहीं हो सकता। इसको शिवनेत्र कहते हैं ।

इस महायज्ञ में शामिल होने के लिए केवल व्यक्ति विशेष या अधिकारी लोगों को ही नहीं चुना जाता। उनका कहना था कि माता-पिता का द्वार उनकी हर संतान के लिए हर समय खुला रहता है। जगत -जननी चिर आनन्दमयी माँ की गोद में बैठने के अधिकारी उसकी सभी संतान हैं। माँ यह कभी नहीं चाहती कि उसके कुछ बच्चे सुखी रहें और कुछ दुःख व कष्ट से कराहते रहें। इसलिए पूज्य गुरुदेव व्यक्तिगत समाधि के बजाय समष्टि समाधि पर बल दिया करते थे। इसमें सम्मिलित होकर लाभ उठाने का अधिकार मन्दिर, मस्जिद, गिरजा व गुरुद्वारे वालों सब को समान रूप से था। ऐसे लोगों के बीच में उन्होंने अजस्र प्रेम की गंगा बहा दी। सबको प्रेम तट पर एकत्र कर दिया। वह कहा करते थे - " सभी धर्म एक ही परमात्मा की उपासना कर रहे हैं, सभी मार्ग एक ही लक्ष्य की ओर जा रहे हैं। फिर यह आपस में वैमनस्य या झगड़ा क्यों "?

पूज्य गुरुदेव महात्मा गाँधी को अवतार कहा करते थे। महात्मा गाँधी का भी कहना था कि संसार में सभी मनुष्य एक समान हैं। अतः सबसे प्रेम करना चाहिए। अपना जीवन ही उन्होंने प्रेम और एकता के लिए समर्पित कर दिया। हमारे पूज्य गुरुदेव भी यही कहते थे कि हर मनुष्य से प्रेम करना चाहिए। महात्मा गांधीजी की एक सौ पच्चीसवीं जन्म तिथि मनाई जा रही है। छोटे-बड़े, ऊँच-नीच व जाति भेद के विभाजन को वह कभी भी पसन्द नहीं करते थे। यदि कोई जाति-समूह दूसरे जाति के प्रति अन्याय करता था तो वह उसके विरोध में अनशन करते थे। संसार को उन्होंने स्वयं लंगोटी पहन कर और झोंपड़ी में रह कर दिखा दिया कि सभी मनुष्य एक समान हैं।

आज भी गुरुदेव के आन्तरिक साधना की पावन धारा बह रही है। बिखरे हुए माला के दानों को एक सूत्र में पिरो देने के लिए वे एक ऐसा स्नेह सूत्र छोड़ गए हैं जो जन-मानस को बांधता जा रहा है।

अतः बह रही उस प्रेम गंगा में हम सभी आपस में एक मन होकर स्नान करें और फिर उसी आन्तरिक प्रेम को संजोकर विश्व के कोने-कोने में प्रेम लहर को प्रवाहित कर दें। आपसी भेद-भाव को सदा के लिए संसार से मिटा देने का प्रयत्न करें। देश भर में सबको इस सहज आन्तरिक साधन में उतारा जाए। आवश्यकता है इस सुगम साधना प्रणाली को जीवन में उतार लेने की और घर-घर इस प्रणाली को पहुँचाकर प्रकाशित कर देने की । यही हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी उनकी (गुरुदेव की) १००वीं वर्षगाँठ पर ।

0000000